।। श्रीः ।।

नीतिशतकम्

डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकरः

चौखम्भा प्रकाशन
पो.बा.नं. ११५०, वाराणसी

।। श्रीः ।।

चौ.सं.भ. ग्रन्थमाला
४०

श्रीभर्तृहरिविरचितं

नीतिशतकम्

(अन्वय-व्याख्या-संस्कृतार्थ-अनुवाद-
आङ्गल भाषानुवाद-सहितम्)

टीकाकार
डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर
एम.ए., पी-एच्.डी., साहित्याचार्य

सम्पादक
डॉ. सुरेश कुमार अवस्थी
रीडर-राजनीतिशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा प्रकाशन
पोस्ट बाक्स नं. ११५०
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक

चौखम्भा प्रकाशन

पोस्ट बाक्स नं. ११५०

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (समीप मैदागिन)

वाराणसी - २२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ०५४२-२३३५९२९, ६४५२१७२

E-mail : c_prakashan@yahoo.co.in

संस्करण : तृतीय, वि० सं० २०६८

मूल्य : रु. ४०.००

मुद्रक : मित्तल आफसेट, वाराणसी

THE
C.S.B. SERIES
40

NĪTISHATAKAM
of
BHARTṚHARI

With Sanskrit Commentary
and Hindi-English Transaltion
By,

Dr. Rajeshwar Shastri Musalgaonkar
M.A. Ph.D. Sahityacharaya

Edit By

Dr. Suresh Kumar Awasthi
Reader - Department of Political Science
Banaras Hindu University, Varanasi

CHAUKHAMBHA PRAKASHAN
Post Box No. 1150
K. 37 / 116, Gopal Mandir Lane
VARANASI

।। समर्पणम् ।।
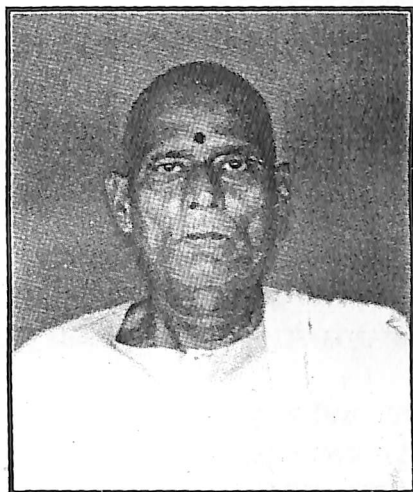
१-१०-१९३३, ३०-०६-२००३

वेदशास्त्र सम्पन्न

स्व. डॉ. विनायक रामचन्द्र रटाटे जी

के चरण कमलों में सादर समर्पित

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
दिनांक : ८-१२-२००३

राजेश्वर शास्त्री
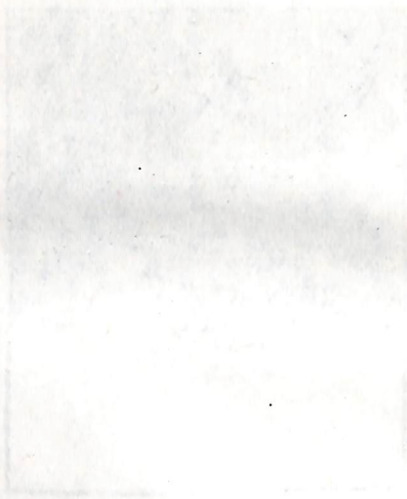
दो शब्द

आचार्य भर्तृहरि की कमनीय रचना **नीतिशतकम्** नीतिशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ इस विषय का प्रतिनीधि काव्य है। नीतिशतकम् में उदात्त गुणों का समावेश है जिनका अनुशीलन समग्र मानव समाज का परम मंगल साधक है। किं बहुना जीवन मूल्यों की शिक्षा देने वाला ऐसा ग्रन्थ विश्व भाषा साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

प्रस्तुत संस्करण त्रिवेणी संगम है। हम संस्कृत व्याख्या, हिन्दी अर्थ एवं आंग्ल भाषा अनुवाद के साथ संस्करण पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। श्लोकार्थ का अंग्रेजी भाषानुवाद प्रसिद्ध आंग्लभाषाविद् **श्री संजय आफळे** (खुपोली - रायगढ़) महाराष्ट्र ने किया है जिस कारण संस्करण और अधिक व्यापक हो गया है। हमारा प्रयास श्लोक के मर्मतक पाठक वर्ग को पहुँचाने का है। इस कार्य में हम कहाँ तक सफल रहे हैं इसका निर्णय पाठक वृन्द ही करेगा। संस्करण की सफलता के लिए योग्य विमर्श सदा अपेक्षित रहेगा।

पूज्यपाद पितृचरण **डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर** एवं पूज्यनीया जननी **सौभाग्यवती प्रमिला** एवं पुत्र वत्सला **श्रीमती विजयश्री रटाटे** (काकू) जी का अनन्त उपकार मानता हूँ, जिनके कृपा प्रसाद से मैं इस व्याख्या को पूर्ण कर सका हूँ। एतदर्थ उनके श्रीचरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम है।

प्रस्तुत संस्करण का कुशल सम्पादन प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्र विशारद **डॉ. सुरेश कुमार अवस्थी जी** ने कार्य संघात में व्यापृत रहते हुए भी दक्षता पूर्वक किया है जिससे संस्करण का महत्व और बढ़ गया है। तदर्थ उन्हें नमन पूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

पं. कैलाश तिवारी वाराणसी, पं. जयकिशन शर्मा सम्पादक 'स्वदेश' (ग्वालियर), पं. बलदेव शर्मा सम्पादक 'अमरउजाला' (दिल्ली), पं. राकेश पाठक सम्पादक 'नवभारत' (ग्वालियर), श्री दिनेश जैन 'समाजसेवी' (उज्जैन) श्री सुरेश कुमार वर्मा (उज्जैन) एवं प्रसिद्ध व्यवसायी श्री सीयाराम मौर्य (वाराणसी) का मैं हार्दिक आभार मानता हूँ जिन्होंने मुझे सतत अनुसंधान प्रवृत्ति की ओर उन्मुख़ होने की प्रेरणा दी। भूतभावन श्रीविश्वनाथ से उनके आयु-आरोग्य-ऐश्वर्य की कामना करता हूँ।

अन्ततः उन मित्रों एवं बन्धु-बान्धवों का स्मरण करना आवश्य कर्त्तव्य हो जाता है जिनका मुझे जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों में सहयोग प्राप्त होता रहता है। डॉ. श्याम मुसलगाँवकर (ग्वालियर), पं शेखर शास्त्री (ग्वालियर), श्री शरद मुसलगाँवकर (ग्वालियर), डॉ. आर.डी. मुसलगाँवकर (उप कुलसचिव) जीवाजी विश्वविद्यालय (ग्वालियर), श्री शिवदास मौर्य (समाजसेवी वाराणसी), श्री प्रमोद कुमार तिवारी (संगठनमंत्री अखिल भारतीय ब्राह्मणमहासभा, वाराणसी), पं. आलोक उपाध्याय (एल.एल.एम.), श्री प्रमोद कुमार, श्री संजय तिवारी, श्री राजनारायण राय, डॉ. राकेश पाण्डेय, श्री विजय खर्डेकर (उज्जैन), डॉ. चन्द्रकान्त मुसलगाँवकर (वेद मन्दिर, इन्दौर), श्री मुकुल पण्ड्या (उज्जैन), श्री रवीन्द्र उज्जैनकर (उज्जैन), डा. प्रदीप सिंह पवार (उज्जैन) एवं श्री दिनेश सिंह (वाराणसी) का आभार मानते हुए अनेक़ धन्यवाद देता हूँ, और भूत-भावन श्रीविश्वेश्वर माहदेव से नित्य उनके शुभोदर्क की कामना करता हूँ।

अन्त में मनुजसुलभ प्रमाद और त्वरा से उत्पन्न स्खलन में सूचना और क्षमा प्राप्ति की आशा कर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

श्री हरिः शरणम्

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
दिनांक : ८-१२-२००३

विदुषांवशंवदः
राजेश्वर शास्त्री

भूमिका

संस्कृत साहित्य में विविध विषयों पर रचित ग्रंथों में उपदेश या नीति के वर्णनपरक अनेक उल्लेखनीय ग्रंथ (जैसे– चाणक्यनीति, कामन्दकनीति, कणिकनीति, विदुरनीति आदि) उपलब्ध होते हैं, जिनमें प्रासादिक शैली द्वारा जीवन को सुखमय तथा लाभप्रद बनाने के लिए नितान्त उपयोगी विविध विषयों का वर्णन किया गया है। विविध वृत्तों में निबद्ध– इन उपदेशपरक अथवा नीतिविषयक मुक्तक पद्यों में स्वाभाविकता और रोचकता इतनी अधिक है कि ये श्रोताओं के हृदय को सद्य प्रभावित करने में अलम् होते है।

नीतिकाव्य तथा उपदेश काव्य में अत्यन्त सूक्ष्म भिन्नता परिलक्षित होती है। यद्यपि जीवन को सुखमय बनाने के निमित्त उपदेश देना दोनों का समानरूप से उद्देश्य है, परन्तु नीतिकाव्यों में सूक्ति का चमत्कार तथा सौष्ठव निहित रहता है, जबकि उपदेशकाव्यों में अर्थ की कल्पना पर विशेष बल रहता है। उपदेशात्मक काव्य का कवि काव्य के सर्वमान्य प्रयोजन– 'कान्तासम्मित उपदेश' का आश्रय ग्रहण कर पाठक को मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षण तथा हृदयावर्जन के साथ-साथ तत्त्व का उपदेश देना अधिक हितकर समझता है। इस प्रकार इस उपलब्ध साहित्य– (नीतिपरक और उपदेश विषयक) की दो शैलियाँ हैं– (१) साक्षात् रूपसे और (२) परोक्ष रूप से। हम यहाँ उन नीतिग्रंथों की चर्चा नहीं करना चाहते जिनका उद्देश्य साक्षात् शैली को ग्रहण कर रमणीयार्थ का प्रतिपादन करना नहीं होता। अत: यहाँ उपदेशपरक काव्यों में से केवल भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक' की ही संक्षेप में चर्चा करते हैं, जो काव्य-पाठक के पाशविक जीवन स्तर ('आहार-निद्रा-भय और मैथुन)'– को ऊपर उठाकर उसका हृदयानुरञ्जन अपनी कोमल-कान्त पदावली से करते हुए, मानवी-जीवन-स्तर पर प्रस्थापित करने का प्रयत्न करता हैं। बात भी ठीक है, मस्तिष्क और हृदय को यदि दूषित वैचारिक वातावरण से बाहर लाकर विचार किया जाय तो स्पष्टरूप से ज्ञात होता है कि मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुख पक्षिता से बचाना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है। रसात्मक साहित्य की रचना भी किसी खण्ड सत्य के लिए नहीं होनी चाहिए। उसे केवल वाग्विलास का साधन बनकर ही नहीं रहना चाहिए। जो वाग्जाल केवल पाशविक वृत्ति को ही जाग्रत करता है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।

वस्तुत: इस प्रकार के काव्य लिखने की प्ररेणा-भर्तृहरि को 'चाणक्यनीति' तथा पौराणिक सुभाषितों से ही संभवत: मिली होगी, जिनमें भारतीय मनीषियों के लोक-व्यवहार और राजनीति से सम्बन्धित सूक्ष्म अनुभव तथा व्यापक-ज्ञान का पूर्ण परिचयात्मककोषनिहित है।

भर्तृहरि– (६०० ई०)

संस्कृत साहित्य के प्राचीन यशस्वी कवियों की तरह श्रेष्ठ कवि भर्तृहरि की कविता जितनी लोक प्रसिद्ध है, उनका व्यक्तित्व उतना ही अज्ञात हैं। इतिहास उनके विषय में एकदम मौन होने से हम आज उनकी स्थिति तथा जीवन-चरित्र से अपरिचित हैं। कर्णपरम्परा के आधार पर कुछ लोग उन्हें राजा के रूपमें देखते हैं, किन्तु उनके रचित-शतकत्रय से राजसी भाव नहीं झलकता। अत: दन्तकथा के मूल में सत्यांश प्रतीत नहीं होता। कतिपय विद्वान् उन्हें महावैयाकरण भर्तृहरि से अभिन्न मानते हैं, परन्तु इस विश्वास के पीछे ठोस प्रमाण का अभाव है। पाश्चात्य शोधक विद्वान् चीनी यात्री इत्सिंग के कथन में विश्वास करते हुए उन्हें बौद्ध धर्मावलम्बी मानते हैं, जो गृहस्थ और सन्यासी जीवन के मध्य में अनेक चक्कर लगाते रहे हैं। भर्तृहरि रचित मुक्तक पद्यों के तीन संकलन (शतकत्रय– 'नीतिशतक', 'शृंगारशतक', और 'वैराग्यशतक') हैं, जो उनके सुयश के मानों तीन स्तम्भ हैं। ('नीतिशतक' की चर्चा अन्त में करेंगे) पर उनके शतकत्रय का अनुशीलन उन्हें स्पष्टरूपसे वैदिक धर्मावलम्बी अद्वैतवादी सिद्ध करता है। जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि उन्हे जीवन का और मानव-वृत्तिका यथार्थ ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य का अनुशीलन एक ऐसे व्यक्ति के मानस चित्र को अंकित करता है जो "पर्वतों की कन्दरा अथवा विलासिनियों के नितम्बभाग, गंगा के पवित्र तट अथवा यौवनावस्था से दमकती-मनोहर युवतियों के आलिंगन-शान्त-एकान्त वन या सुन्दरियों के यौवन", इन दो विकल्पों के मध्य निश्चय के अभाव में दोलायमान हो रहा है। 'शृङ्गारशतक' में कवि ने सम्मोहन उत्पन्न करने वाली कोमल-कान्त पदावली में युवतियों के दुर्निवार आकर्षणों का चित्र अंकित किया है–

कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशाक्षिपातैः ? (८)

भयभीत-हरिणी के से मुग्ध कटाक्षों से ये तरुणियाँ किसके मन को संमोहित नहीं

कर लेती ? वह कहता है कि मदोन्मत हाथियों तथा खूँखार शेरों का वध करने वाले शूरवीर पुरुषों की यहाँ कमी नहीं है, किन्तु कन्दर्प का गर्व चूर कर देनेवाले पुरुष विरले ही मिलेंगे– **'कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ।'** भर्तृहरि को नारी-हृदय की सच्ची परख थी। प्रेम से प्रभावित कामी जनों के चित्त में उभरनेवाली वृत्तियों के खेल से उत्पन्न होने वाले विषय-परिणाम से भी वह भलीभाँति परिचित है। भर्तृहरि की दृष्टि में नारी सुख-दुःख आकर्षण और विकर्षण दोनों का चिरन्तन स्रोत है। अतः कवि अतिप्रणय से अप्रणय, आकर्षण से विकर्षण, राग से विराग की ओर बढ़ता हुआ अन्त मे वैराग्य की ओर उन्मुख हो जाता है।

वैराग्यशतक –

वैराग्यशतक में एक ऐसे आदर्शवादी का दुःख-दैन्य मुखरित हो उठा है, "जो सांसारिक जरा-व्याधिसे, आय-व्यय की चिन्ताओं से और आत्मसम्मान को निरन्तर लगनेवाली चोटों से त्रस्त है तथा जो उदासीनता और वैराग्य में ही शान्ति एवं सन्तोष का स्वप्न देखता है।" वस्तुतः यह शतक कवि का सर्वस्व प्रतीत होता है। उसकी दृष्टि में सन्तोष ही परम सुख है तथा वैराग्य इसका एकमात्र साधन है। सांसारिक विषयों का आकर्षण उनकी सारहीनता से भग्न हो जाता है, वह कहता है–

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।'

देखिए, कितना वैचित्र्य है कि विषय-भोगों का उपभोग न होकर स्वयं हमारा ही शोषण हो गया, तपस्या करने के स्थान पर हम ही सांसारिक दुःख-शोक से तप गए, समय क्या बीता, हम ही समाप्त हो चले, और तृष्णा के जीर्ण होने के बजाय हम ही जीर्ण हो गए।" कितना यथार्थ चित्र है ! ऐसी अभिव्यक्ति भुक्त-भोगी की ही हो सकती है। यद्यपि शतकत्रय में नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक के नाम से शतकों का क्रम आज उपलब्ध शतकत्रय में परिलक्षित होता है, तथापि तीनों शतकों में कवि का मूलस्वर 'वैराग्य' की ओर ही मुडा हुआ है। देखिए– श्रृंगार शतक– ७०, ८१, ८७ कवि प्रारम्भ से ही विरक्ति की ओर प्रवृत्त हुआ है। उसके स्वर में संसार की परिवर्तनशीलता और नश्वरता से उत्पन्न निराशा तथा टूटे हृदय की घोर पीड़ा ध्वनित है। देखिए, नीतिशतक के दूसरे श्लोक में ही कवि कहता

है– 'यां चिन्तमामि सततं मयि सा विरक्ता...........धिक् तांच तं च मदनं च इमां च मां च ।।

इससे तो कवि के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित प्रचलित दन्त कथा की ओर ही संकेत मिलता है। कहा जाता है कि एक बार एक सिद्ध साधु ने राजा का (भर्तृहरि को ?) एक अपूर्व फल प्रसाद के रूप में दिया था। राजा ने उस फल को सदा हृदय में रहनेवाली अपनी लाड़ली रानी (पत्नी) को बड़ी प्रसन्नता से खाने के लिए दिया था। किन्तु रानी ने उस फल को सदा विचारों में रहनेवाले अपने जारपति (उपपति) को दे दिया। उसने भी उस फल को अपनी प्रेयसी एक वेश्या को स्वयं न खाकर दे दिया। उस वेश्या ने भी उस अपूर्व फल को राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने हेतु राजा को लाकर समर्पित कर दिया। राजा (भर्तृहरि ?) ने उस अपूर्व फल को पहचान कर, रानी को दिया हुआ यह फल वेश्या के पास किस प्रकार पहुँचा, इस बात का सूक्ष्मरीत्या अन्वेषण कराकर, रानी के घृणित कृत्य की जानकारी प्राप्त की। सूचना के आधार पर प्राप्त ज्ञान से राजा को घोर वैराग्य हुआ और वह राज्य का त्याग कर वन में चला गया।

नीतिशतक :–

भर्तृहरि के शतकत्रय में से प्रथम शतक है। संस्कृत साहित्य में मुक्तक-काव्य (पद्यों) की विपुलता देखने को मिलती है। किन्तु-शतक के रूप में उनको एकत्र संकलित करने का प्रयास भर्तृहरि ने सर्वप्रथम किया है। इनके पूर्व किसी कवि की शतक के रूप में कोई रचना देखने में नहीं आयी है।

'नीतिशतक' में कवि ने परोपकारिता, वीरता, साहस, उद्योग, उदारता जैसे उदान्त गुणों को ग्रहण करने के लिए आग्रह किया है, जिनको प्राप्त करने पर समस्त मानवता का कल्याण हो सकता है। कवि दुर्लभ मानव-जीवन को सद्‌गुणों के उपार्जन से सार्थक बनाने के पक्ष में हैं। उनके विचारमें 'जो व्यक्ति दुर्लभ मानव शरीर पाकर भी यदि सद्‌गुणों का संचय नहीं करता, तो वह उस मूर्ख के समान उपहासास्पद है जो वैदूर्य-मणि के बने हुए पात्र में चन्दन की लकडी से लहसुन पकाता है, अथवा जो सुवर्ण निर्मित हलसे अर्क (आक) की जड़ प्राप्त करने के निमित्त जमीन को जोतता है।'' उसके विचार में इस संसार में निभने के लिए मनुष्य मे विविधता से परिपूर्ण दक्षता आवश्यक है। वह कहता है 'स्वजनों के प्रति

उदारता, परजनों के प्रति दया, दुष्टों के प्रति शठता, सज्जनों के प्रति प्रेम, नीच जनों के प्रति औद्धत्य, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रुओं के प्रति वीरता, गुरुजनों के प्रति क्षमाभाव, स्त्रियों के प्रति धूर्तता– जो पुरुष उक्त व्यवहारिक कलाओं में कुशल-दक्ष-है, वही इस विचित्र संसार में निभ सकता है।'' (२२) सन्तों को परोपकार करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं होती, उनमें परोपकार करने की भावना निसर्गतः ही रहती है– 'सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः'। (७३) यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'नीतिशतक' में केवल नैतिक आदर्शों का ही प्रतिपादन नहीं किया गया है, उसमें इस विचित्र संसार की निष्ठुरता और हृदयहीनता के प्रति स्पष्ट विद्रोह की भावना भी मुखर हो उठी है। वह संसार के इस व्यवहार के कारण अत्यन्त दु:खी है–

'बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्।।'

'जिनमें समझने की शक्ति है, वे ईर्ष्या-द्वेष की भावना से ग्रस्त है, जिनमें प्रभुता या अधिकार केन्द्रित है, वे अहंकार से अभिभूत है, शेष सभी अज्ञान में निमग्न हैं, इसीलिए तो मेरी समस्त उपदेशपूर्ण सूक्तियाँ मेरे अन्दर ही जीर्ण हुई जा रही है।'

'राजाओं का औद्धत्य, धन का मद, दासता का अपमान, शिक्षा और शिष्टता से दम्भ और अभिमान का संघर्ष, दुष्टों और मूर्खों के द्वारा सज्जनों और विद्वानों का अपमान (मखौल) ये बानगी के रूप में उपन्यस्त बातें कवि के हृदय में शूल की तरह चुभती हैं।

उक्त तीनों शतकों का अनुशीलन कवि के सांसारिक विविधतापूर्ण एवं गहरे अनुभव को, मानव मन की वृत्तियों के सूक्ष्म निरीक्षण को एवं चित्त में उत्पन्न होनेवाली विरक्ति के अन्वेषित स्रोत को स्पष्टांकित कर देता है।

उक्त तीनों शतकों में प्रयुक्त एक जैसी प्रांजल शैली और मनोहर पद-लालित्य कवि की काव्य-प्रतिभा को प्रदर्शित करता है। उपन्यस्त उदाहरणों की विषयानुरूपता और सूक्तियों का भाव सौन्दर्य तथा उनकी रसाप्लुत कमनीयता के कारण ही भर्तृहरि के शतकत्रय की साहित्य जगत् में आज विशेष प्रसिद्धि है। यदि यह कहा जाय कि भर्तृहरि के रससिद्ध सुभाषितों के सम्मुख सुधा तिरस्कृत होने के

भय से भूतल को छोडकर दिव्यलोक को चली गई तो, कोई अत्युक्ति नहीं होगी– 'सुभाषितरसस्याग्रे सुधा भीता दिवं गता'।

नीतिशतकम् की डॉ.राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर द्वारा संस्कृत के साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में की गई व्याख्या अबतक चली आ रही बहुत बड़ी कमी को पूरा करने का एक सार्थक प्रयास है। डॉ. राजेश्वर मुसलगाँवकर का संस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन में स्वयं के प्रयत्नों के साथ परिवार की विद्वत् परम्परा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। लम्बे काल से अनुभव किया जा रहा है कि प्राचीन ज्ञान को वर्तमान पीढ़ी तक पहुचाने के दायित्व निर्वाह में विद्वज्जनों ने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया है। मैं समझता हूँ कि डॉ. राजेश्वर ने इस कमी की भारपायी करने की ओर ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध में बहुत कार्य किये जाने की आवश्यकता है और मैं आशा करता हूँ कि डॉ. राजेश्वर इस कमी को पूरा करने को एक अभियान के रूप में ग्रहण करके इसे आगे भी चालू रखेंगे। इसी विश्वास के साथ।

सी. के १४/२६ नन्दन साहू लेन, चौक
वाराणसी

सुरेश कुमार अवस्थी

।। श्रीः ।।

श्रीभर्तृहरियोगीन्द्रविरचितं

।। नीतिशतकम् ।।

पण्डित राजेश्वर केशवशास्त्रिविरचितया नितिपथाख्यया व्याख्यया समेतम् ।।

।। मंगलाचरणम् ।।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।।१।।

पूज्यो गणेश इति शक्तिरपीह केचित्
प्राहुः परे च तपनं शशिभालमन्ये ।
तैस्तैर्विभासि खलु रूपगुणैस्त्वमेव ।
तस्मात्त्वमेव शरणं कमलायतताक्ष! ।।

रमते भारती यत्र शास्त्रार्थो राजते मुखे ।
यत्कृपा सफलानूनं वन्देऽहं तं गजाननम्[१] ।।

अन्वयः (Prose Order)– दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्यैकमानाय शान्ताय तेजसे नमः ।।१।।

नीतिपथः– इह खलु अत्र भवानशेषसारपारावारीणः योगीश्वरः भर्तृहरिनामा परमकारुणिकः लोकनुग्रहचिकीर्षया नीतिशतकनामकं कंचित्प्रबन्धमारभमाणः निर्विघ्नपरिसमाप्तिमाशासानः परमेश्वरनामसंकीर्तनपूर्वकं नमस्काराकारं मंगलमादौ निर्दिशति । **दिगिति।** दिशश्चाशाश्च प्राच्याद्याः कालश्च भूतादिसमयविशेषश्चादिर्येषान्तैर-नवच्छिन्नोऽपरिमितः पुनश्चानन्तामर्यादिता या चित् चेंतना सैव मूर्तिर्यस्य तस्मै । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्चताः' **इत्यमरः** । एतद्रूपायेत्यर्थः । तथा स्वानुभूतिः आत्मानुभव एव एकं मुख्यं अद्वितीयं मानं वा स्वप्रकाशसाधनं यस्य तस्मै । तथा शान्ताय अविद्यातत्कार्यसंबधशून्यत्वात्प्रसन्नाय, तेजसे ज्योतिरूपाय

---

१. महामहोपाध्याय-मीमांसाभूषण-वैदिकतिलक-डॉ. गजाननसदाशिवशास्त्रिचरणा मदीयगुरुचरणाः ।

ब्रह्मणे नमोऽभिवादनं ममास्तु । मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्त्यायुष्मन्तश्चाध्येतारो यथा स्युरिति पातञ्जले मङ्गलस्य सफलत्वं प्रदर्शितम् अनुष्टुब्वृत्तम्-पञ्चमं लघु सर्वेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः । गुरुषट्कं च सर्वेषांमेतच्छलोकस्य लक्षणम्' इतिवचनात् ।।१।।

संस्कृतसरलार्थः– दिक्कालाद्यवच्छेदकपदार्थैर्परिक्लृप्ताय अत एव अपरिमिताय ज्ञानघनमूर्तये स्वानुभूत्यैकगम्याय तेजोमूर्तये ब्रह्मणे नमोऽस्तु ।।१।।

हिन्दी– दिशा और काल से अनवच्छिन्न अर्थात् परिमित न किये गये, अनन्त, चैतन्यस्वरूप, स्वानुभूत्यैकगम्य ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है ।।१।।

English Translation– A bow to that Deity who is beyond the measures of Time and Space, who is formless and whose only form in infinite Consciousness, who is beyond the three attributes of Matter, still whose very self is three properties. (1)

यां चिन्तयामि सततं, मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं, स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितप्यति काचिदन्या,
धिक् तां च, तं च, मदनं च, इमां च, मां च ।।२।।

अन्वयः (Prose Order)– यां सततं चिन्तयामि सा मयि विरक्ता, साप्यन्यं जनमिच्छति, स जनोऽन्यसक्तः । अस्मत् कृते च काचिदन्या परितप्यति । ताञ्च तञ्च मदनञ्चेमाञ्च माञ्च धिक् ।।२।।

नीतिपथः–श्लोकेनानेन भर्तृहरिः संसारस्य भावनामनित्यतां वैचित्र्यञ्च प्रतिपादयति । इयमेव कथा तस्य नीतिवैराग्यश्रृंगाराख्यशतकत्रयस्य रचनाया मूलभूता इत्यपि श्रूयते । तथा च कविरात्मगतं वृत्तान्तमुपवर्णयति । **यामिति।** यां कान्तां सततं रात्रन्दिवं चिन्तयामि स्मरामि सा मयि विरक्ता विरसा । न तस्या मयि लेशेनापि राग इति भावः । साप्यन्यं मद्व्यतिरिक्तं कमपि जनमिच्छति कामयते। स जनश्च यो हि तया काम्यतेऽन्यसक्तोऽन्यस्यां तदरिक्तायां कस्यांचित्सक्तो लग्नचेताः । अस्मत्कृते चास्मदर्थे च काचिदन्यस्माभिः काम्यमानाया व्यतिरिक्ता काचित् परितप्यति दह्यते कामेन कुतो न अहन्तां कामये यतः सा नक्तन्दिवं महत् कष्टमनुभवन्ती तिष्ठति । अहो परमिदं वैचित्र्यं जगति कियतीवेयं विषमता प्रेमपथस्य यात्रिणां यत् प्रेमाणं कुर्वतोऽन्यमेवान्यामेव

वा सर्वे सर्वा वा कामयन्ते। तस्मात्तां च स्त्रियं तञ्च पुरुषञ्च मदनञ्च कामञ्चेमाञ्च याऽस्मत्कृते परितप्यति। माञ्च भर्तृहरिम् धिक्। 'धिड़ निर्भर्त्सननिन्दयोः' इत्यमरः। सर्वे वयमविशेषेण निन्द्याः। वसन्ततिलकावृत्तम् 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इतिवचनात् ॥२॥

संस्कृतसरलार्थः– अहं यां कान्तां रात्रिन्दिवं चिन्तयामि, तस्या मयि लेशेनापि रागः न वर्तते। साऽपि मद्व्यतिरिक्तं कमपि जनं कामयते, यो हि तया काम्यते, सः जनः अन्यस्यां तदिरिक्तायां कस्यांचित् सक्तः वर्तते। मयि अपि काचिदन्या स्त्री अनुरक्ता वर्तते यस्यां मम् अनुरागराहित्यमस्ति। अत एव मद्वाञ्छितां तां तया वाञ्छितं तं जनं, कामदेवं, मदनुरक्तां इमां, माञ्च धिक्कारोऽस्ति ॥२॥

हिन्दी– जिस स्त्री का मैं अहो-रात्र चिन्तन करता हूँ, वह मुझसे विमुख है। वह भी दूसरे पुरुष को चाहती है। उसका अभीष्ट वह पुरुष भी किसी अन्य स्त्री पर आसक्त है। तथा मेरे लिये कोई अन्य स्त्री अनुरक्त है। अतः उस स्त्री को, उस पुरुष को, कामदेव को, मेरे में अनुरक्त इस स्त्री को तथा मुझे धिक्कार है ॥२॥

English Translation– She, whom I Contemplate, is always indifferent to me. She too wants another (for her) and he in turn is attached to another woman. An another woman is carveing for my love. Fie upon that woman, that man, upon cupid, this woman and also upon myself. (2)

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

अन्वयः (Prose Order)– अज्ञः सुखमाराध्यः विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं तन्नरं ब्रह्मापि न रञ्जयति ॥३॥

नीतिपथः– श्लोकचतुष्टयेन मूर्खस्य समाधानमत्यन्तदुष्करमित्याह। **अज्ञ इति।** न जानातीत्यज्ञः। मूढ इति यावत्। 'अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः' **इत्यमरः।** स सुखं सारल्येनाराध्यः समाधातुं शक्यः। तस्योपदेशमात्रेणैव विस्रम्भसम्भवादिति भावः। विशेषज्ञो विशेषं गुणावगुणयोर्भेदं जानातीति विशेषज्ञः तत्ववेत्ता स ततोऽपि सुखतरमधिकतरेण सारल्येनाराध्यः प्रसादयितुं शक्यते। विद्याबलेन कृत्याकृत्यं विविच्य विद्वांसः विद्वासं शीघ्रमेव प्रसादयितुं शक्नुवन्ति। किन्तु ज्ञानं शास्त्रजन्यसंवित् तस्य लवेन प्राप्तेन लेशमात्रेण दुर्विदग्धं पण्डितंमन्यं तन्नरम्।

मूर्खजनमित्यर्थः । ब्रह्मापि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः जगत्स्रष्टापि न रञ्जयति प्रसादयितुं न शक्नोति । रञ्जनसम्बन्धेप्यसंबन्धाभिधानदतिशयोक्तिभेदः । विदग्ध शब्दो विद्वद्वाचकः परं दुरुपसर्गो निन्दावाचित्वेनाभिमानं वक्ति । आर्यावृत्तभेदोऽयमुन्नेयः ॥३॥

संस्कृतसरलार्थः– यो हि किमपि न जानाति स सुखेन आराधयितुं शक्यः । यस्तु विशेषज्ञः तत्त्ववेत्ता मुर्खापेक्षया अत्यन्तानायासेन आराध्यते । यतः स विद्याबलेन कृत्याकृत्यं विविच्य विद्वांसो विद्वासं शीघ्रमेव प्रसादयितुं शक्नुवन्ति । किन्तु स्वल्पेनैव ज्ञानेन गर्वितमानसं पण्डितमानिनं नरं पितामहो ब्रह्माऽपि प्रसादयितुं न शक्नोति । तन्मनसः सूक्तिसहस्रैरपि समाधानासंभवादिति ॥३॥

हिन्दी– जो कुछ न जानता हो, अर्थात् मूर्ख को सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है। बहुत जानने वाला अर्थात् विशेषज्ञ को तो अनायास प्रसन्न किया जा सकता है। परन्तु ज्ञान के लेशमात्र को पाकर दुर्विदग्ध हुए मनुष्य को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता, मनुष्य की तो बात ही क्या है ॥३॥

English Translation– An idiot can easily be pleased and one who knows much can be pleased with still greater ease. Even the creator cannot satisfy a man who is possessed of only a smattering of knowledge but prides himself on it. (3)

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात्[1]
समुद्रमपि संतरेत्[2] प्रचलदूर्मिमालाऽऽकुलम् ।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेन्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।।४।।

अन्वयः (Prose Order)– मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरात् प्रसह्य मणिमुद्धरेत् । प्रचलदूर्मिमालाकुलं समुद्रमपि संतरेत्, कोपितमपि भुजङ्गं शिरसि पुष्पवद्धारयेत् । प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं तु नाराधयेत् ॥४॥

नीतिपथः– अथ द्वाभ्यां मूर्खजनचित्तस्य दुराराध्यतामाह-**प्रसह्येति**। मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरात् मकरः जलग्राहविशेषस्तस्य नक्रस्य वक्त्रं वदनगह्वरं मुखं वा तस्मिन् दंष्ट्राणां निशिताग्रदशनविशेषाणामन्तरादतिसंकटादित्यर्थः । अंकुरोऽत्राग्रभागः ।

---

१. दष्ट्रान्तरात्,

२. लङ्घयेत् ।

लग्नं मणिं रत्नं प्रसह्य हठेन दुरूद्धरमपि उद्धरेदुद्धर्तुं शक्नुयात्। जन इति शेषः। प्रचलदूर्मिमालाकुलं प्रचलन्त उत्तिष्ठन्तश्च त ऊर्मयो लहर्यस्तन्मालाभिः पंक्तिभिराकुलं संकुलम्। उल्लोलकल्लोलोज्जृम्भितमित्यर्थः। समुद्रमपि महासागरमपि क्षुद्रनदीमिव संतरेत्सम्यक्तरितुं शक्नुयात्। तथा कोपितं सञ्जातकोपमपि भुजङ्गं सर्पमपि। दुर्धरमपीति भावः। शिरसि पुष्पवद् मूर्ध्नि स्रजमिव धारयेत् शिरसा वोढुं शक्नुयादित्यर्थः। एतत् सर्वमतिदुष्करं कार्यजातं प्रयत्नवान्नरो यथाकथञ्चित् सम्पादयितुं शक्नुयात् परं प्रतिनिविष्टमभिनिवेशाक्रान्तम्। मूर्खजनस्य दुर्विदग्धस्य चित्तं नाराधयेत् समाधातुं न शक्नुयात्। अत्र मण्युद्धरणाद्यसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः। पृथ्वीवृत्तम्। तद्यथा-जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः इति तल्लक्षणात्।

संस्कृतसरलार्थः– मनुष्यः स्वबलेन नक्रस्य दंष्ट्रान्तरालात् लग्नं रत्नं दुरूद्धरमपि उद्धर्तुं शक्नुयात्। उल्लोलकल्लोलोज्जृम्भितं महार्णवमपि केनचित्लवनसाधनेन सम्यक्तरितुं शक्नुयात्। संजातकोपमपि सर्पं पुष्पमाल्यमिव शिरसि धारयितुं शक्नुयात्। एतत् सर्वमतिदुष्करं कार्यकलापं प्रयत्नवान्नरः सम्पादयितुं शक्नुयात् परं साग्रहो यो मूर्खजनः तस्य चित्तं समाधातुं न पारयेत्॥४॥

हिन्दी– मगर के मुँह की डाढ़ के अग्रभाग से रत्न को चाहे मनुष्य बलपूर्वक निकाल ले और चाहे उत्तुंगतरङ्गों से संकुलित समुद्र को भी पार कर ले और चाहे क्रोधित सर्प को पुष्पमाला की तरह शिर पर धारण कर ले, परन्तु हठी मूर्ख मनुष्य के चित्त को वह संतुष्ट कभी नहीं कर सकता॥४॥

English Translation– A man may be able to take a Jewel out from the teeth of a crocodile and he may also be able to cross the vast ocean agitated by the rows of rolling waves, a man may also be able to place an infuriated snake like a flower on his head but no body can be able to please the imperious heart of a fool. (4)

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥५॥

अन्वयः (Prose Order)– यत्नतः पीडयन् सिकतास्वपि तैलं लभेत।

पिपासार्दितश्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्। पर्यटन् कदाचित् शशविषाणमपि आसादयेत् प्रतिनिविष्टमूर्खजनचिन्तन्तु नाराधयेत् ॥५॥

नीतिपथः– लभेतेति। यत्नतः प्रयासात् पीडयन् चूर्णयन् कश्चिज्जनः सिकतासु बालुकायामपि 'सिकताः स्युर्वालुकापि' **इत्यमरः,** तैलं स्नेहं लभेत लब्धुं शक्नुयात् तथा पिपासार्दितः पातुमिच्छा पिपासा तया पिपासया तृषयार्दितः तृष्णातुरः मृगतृष्णिकासु मरूमरीचिकास्वपि 'मृगतृष्णा मरीचिका' **इत्यमरः,** जलमयवदाभासितासु वा सूर्यरश्मिभिः सलिलं जलं पिबेत् पातुं शक्नुयात्। मरूदेशादौ सिकतासु प्रतिच्छुरिताः सूर्यकिरणाः जलाकारेण भान्ति। पर्यटन् यत्र तत्र भ्रमन् जनः कदाचित्कस्मिंश्चित्समये शशविषाणं शशस्य शृङ्गमपि आसादयेदधिगन्तुं शक्नुयात्। किन्तु प्रतिनिविष्टस्य मिथ्याग्रहवतो मूर्खस्य शठस्य चित्तं मनस्तु नाराधयेत् समाधातुं न शक्नुयात्। पृथ्वीवृत्तं लक्षणमुक्तम्।

संस्कृतसरलार्थः– कश्चित् मनुष्यः प्रयासात् चूर्णयन् केनचिद्यन्त्रेण संमर्दयन् बालुकायामपि तैलं प्राप्नुयात्। तृषया पीडितो जनः मरूमरीचिकास्वपि सलिलं पिबेत्। इतस्ततः भ्रमन् जनः समयविशेषे शशस्य शृङ्गमपि लभेत। किन्तु मिथ्याग्रहवतः मूर्खस्य चित्तं समाधातुं न शक्नुयात् ॥५॥

हिन्दी– यत्नपूर्वक मनुष्य कदाचित् बालू से भी तेल निकाल ले, पर्यटन करता हुआ मनुष्य शायद कभी खरगोश के सींग पा ले, मृगमरीचिकाओं में चाहे प्यास से व्याकुल व्यक्ति जल प्राप्त कर ले, परन्तु हठी मूर्ख के चित्त को कोई भी प्रसन्न नहीं कर सकता ॥५॥

English Translantion– Pressing hard, a man may obtain oil from sands, a wanderer, some how or other, may come by a horn of a rabbit, one may be able to quench his thurst with the waters of a mirage, but nobody can satisfy the heart of a haughty fool. (5)

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
[१]छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
[२]नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

---

१. 'भेत्तुं' इत्यपि पाठः।

२. मूर्खान्यः प्रतिनेतुमिच्छतिबलात्' इत्यपि पाठः।

अन्वयः (Prose Order)– असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते । शिरीषकुसुमप्रान्तेन वज्रमणीन् छेत्तुं सन्नह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुमीहते यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वाञ्छति ॥६॥

नीतिपथः– अथ मूर्खानुनयेच्छोरत्यन्ताविवेकितामाह-**व्यालमिति** । असौ जनो व्यालं दुष्टगजं 'व्यालो दुष्टगजे सर्पे खले श्वापदसिंहरोरिति' **विश्वमेदिन्यौ,** बालमृणालतन्तुभिर्बालस्यापक्वस्य मृणालस्य बिसस्य तन्तुभिः कोमलैः सूत्रैः, ईषन्निरोधस्याप्यनुपयुक्तैरितिभावः । रोद्धुं बद्धुं समुज्जृम्भते परिश्राम्यति कृतप्रयत्नो भवतीत्यर्थः । शिरीषकुसुमप्रान्तेन अतिकोमलपुष्पविशेषस्य प्रान्तेनाञ्चलेन वज्रमणि वज्रवत् कठिनं रत्नं छेत्तुं वेद्धुं सन्नह्यत उद्युङ्क्ते । मधुबिन्दुना मधुनो माक्षिकस्य बिन्दुना क्षौद्रविप्रुषा वा, 'बिंदुपृषताः पुमांसो विप्रुषः' **इत्यमरः,** लेशमात्रेण क्षाराम्बुधेः लवणार्णवस्य, न तु स्वल्पजलाशयस्य, माधुर्यं मधुरस्य भावस्तदिति मधुरतां रचयितुं कर्तुं वाञ्छति कामयते यो जनः सुधास्यन्दिभिः सुधाममृतं स्यन्दते प्रस्रवन्ति तैः सूक्तैः सुवचनैः खलान् दुष्टान् सतां सज्जनानां पथि मार्गे नेतुं वाञ्छतीच्छति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्-'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् ।

संस्कृतसरलार्थः– यो मनुष्यः दुष्टान् मधुरैः सुवचनैः सज्जनमार्गे नेतुमिच्छति, मन्ये सः कोमलबिसकिसलयसूत्रैः व्यालं नियन्तुं कृतप्रयत्नो भवति । कोमलशिरीषपुष्पस्याञ्चलेन हीराख्यमणिविशेषं विदारयितुं वाञ्छति तथा मधुलवेन लवणार्णवस्य माधुर्यं रचयितुं वाञ्छति ॥६॥

हिन्दी– जो मनुष्य सरल सूक्तियों से दुष्टों को सन्मार्ग पर लाना चाहता है, मानो वह मनुष्य कोमल-कमल तन्तुओं से दुष्ट हाथी को बाँधना चाहता है, शिरीष की नोक से वज्र के समान कठिन मणि को वेधना चाहता है, खारे समुद्र को शहद की बूँद से मीठा करना चाहता है ॥६॥

English Translation– A man who wishes to turn bad habituated people to the path of virtuous or noble with his wise teaching that sprinkle ambrosia (अमृत-सुधा), attempts to tie up a wild elephant with tender lotus stalk, tries to cut a diamond with the edge of Sirisa-flower and wishes to impart sweetness in the sea of salt water with a drop of honey. (6)

स्वायत्तमेकान्तगुणं[1] विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ।।७।।

अन्वयः (Prose Order)– विधात्रा स्वायत्तम् एकान्तगुणं अज्ञतायाः छादनं विशेषतः सर्वविदां समाजे अपण्डितानां विभूषणं मौनं विनिर्मितम् ।।७।।

नीतिपथः– स्वायत्तमिति। विधात्रा ब्रह्मणा अपण्डितानान्नपण्डितास्तेषां मूर्खाणामज्ञताया मूढताया एकान्तगुणमेकः स्वस्य मूर्खस्यायत्तमधीनमेवंभूतानेकगुणविशिष्टं मौनं मुनेर्भावो मौनं मूकभावश्छादनं जवनिका दोषावारकमित्यर्थः । विनिर्मितं कृतम् सर्वविदां सर्व बहु विदन्ति जानन्ति तेषां समाजे। विदुषां सङ्घे। विद्वत्सङ्घः समाजः । विशेषतोऽसाधारण्येन विभूषणमलङ्कारः शोभाजनकमित्यर्थः, अस्तीतिशेषः । साधारणजनसमुदाये मौनेन मुर्खस्य मूर्खतान्न कश्चित् जानीयात् तत्तत्र मौनस्य फलं केवलं मूर्खताप्रकाशनं मात्रम् । विदुषामग्रतस्तु मितभाषी पण्डितोऽयमिति शोभाजनकमपि भवति । उपजातिवृत्तम् ।

संस्कृतसरलार्थः– ब्रह्मणा मूर्खाणां कृते आत्माधीनमत्यन्तहितकारिमौनारव्यं स्वावगुणाच्छादकं गुणं रचितम् । तच्च विदुषां सदसि तेषामाभरणं भवति । अतः अपण्डितैर्मौनिभिरेव स्थातव्यम् । अन्यथा स्वरूपप्रकाशनेनापहासास्पदता स्यादिति-भावः ।।७।।

हिन्दी– विधाता ने अज्ञान के आवरक, अपने अधीन रहने वाले अत्यन्त गुणकारी, विशेषकर विद्वानों के समाज में मूर्खों को सुशोभित करने वाले मौनाख्य गुण को बनाया है ।।७।।

English Translation– The creator has made silence the curtain for hiding the ignorance of the foolish. This cover is under their control and ends only in their good. This silence is especially ornament in as assembly of those who know a lot. (7)

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप[2] इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।

---

१. 'हितं' इति पाठान्तरम् ।
२. 'गज इव' इत्यपि पाठः ।

यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।८।।

अन्वयः (Prose Order)– यदाहं किञ्चिज्ज्ञो द्विप इव मदान्धः समभवन्तदा मम मनः सर्वज्ञोऽस्मि इति अवलिप्तम् अभवत् यदा बुधजनसकाशात् किंचित् किंचित् अवगतं तदा मूर्खोऽस्मि इति ज्वर इव मे मदो व्यपगतः ॥८॥

नीतिपथः– यदेति। यदा यस्मिन् पूर्वकालेऽहं किञ्चिज्ज्ञोऽल्पज्ञो द्विप इव हस्तीव मदेन दर्पेण विद्याभिमानेन हस्ति पक्षे दानेन चान्धो विचारहीनो निरङ्कुशश्चा-भवन्तदा तस्मिन्समये सर्वज्ञः सर्वं सकलं जानातीति सर्वविदित्यर्थः अस्मि भवामीति प्रकारेण मम मनश्चित्तमवलिप्तं साहङ्कारमभवदासीत्। यदा यस्मिन् काले च बुधजनसकाशात् बुधजनानां पण्डितानां जनशब्दो बहुत्ववाची सकाशात् समीपात्। विद्वज्जनमुखादित्यर्थः। किंचित्किंचित्स्वल्पं स्वल्पम्। शास्त्रमेवाहं जाने बह्वद्यापि ज्ञातव्यमवशिष्यत इति भावयतो मे मदो विद्यागर्वो ज्वर इव तापरूपो रोगविशेष इव व्यपगतो दूरीभूतः। मदो गर्वहेतुः गुरुसेवा विनयहेतुरिति फलितार्थः। यद्वा एतावन्तं कालं मदवशान्मूर्खोऽस्मि इदानीं गुरुशिक्षावशाद्विवेकावगतिरिति वा योजनीयम्। शिखरिणी वृत्तम् 'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी' इति तल्लक्षणात्।

संस्कृतसरलार्थः– यस्मिन् समये अहम् अल्पज्ञः सन् अशेषज्ञोस्मीति दर्पेण गज इव मदान्धः कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्यःजातोऽस्मि। किन्तु यदा विद्वज्जनमुखात् स्वल्पं ज्ञानमवाप्तवान् तदा 'मूढोऽस्मि' इति परिज्ञाय मदीयो विद्यागर्वो ज्वर इव निर्गत अभूत् ॥८॥

हिन्दी– जब मैं अज्ञानी था और हाथी की तरह अभिमान से अंधा हो रहा था तब 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस अभिमान से मेरा मन गर्वित था 'परन्तु जब विद्वानों के पास से कुछ-कुछ जाना तब मेरा सारा गर्व' ज्वर की तरह उतर गया और 'मैं मूर्ख हूँ' ऐसा मुझे भासित होने लगा ॥८॥

English Translation– When I knew a bit and was blind on account of madness, like a wild elephant, then my mind was full of pride and I felt that I was the omniscient but when I came to know my degrees from keeping in the company of the wise then my pride subsided altogether, like a fever, and I came to know that I was really ignorant. (8)

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हि[1] जुगुप्सितं
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि[2] निरामिषम् ।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ।।९।।

अन्वयः (Prose Order)– श्वा कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हि जुगुप्सितं निरूपमरसं निरामिषं नरास्थि प्रीत्या खादन्पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते । हि क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न गणयति ।।९।।

नीतिपथः– मूर्खस्यातिनैच्यं दृष्टान्तमुखेनाह **श्वेति** । श्वा शुनकः कृमिकुलचितं कृमीणां क्षुद्रकीटानां कुलैः समूहैश्चितं व्याप्तं लालाक्लिन्नं लालाभिर्निष्ठीवनरसैः क्लिन्नमार्द्रीभूतं विगर्हि निन्दितं जुगुप्सितं घृणाजनकं निरूपमरसं निरूपमः केनाप्युपमातुमशक्यो रसः स्वादो यस्य तत् । निरामिषमामिषं मांसोऽविद्यमानो यस्मिंस्तत् । नरास्थि नरस्य मनुष्यस्य अस्थि कीकसं प्रीत्या प्रेमतया खादन् भक्षयन् पार्श्वस्थः पार्श्वे निकटे तिष्ठतीति पार्श्वस्थस्तं समीपे विद्यमानमित्यर्थः । सुरपतिमपि सुराणां देवानां पतिं राजानमिन्द्रमपि । किमुतान्यमिति भावः । विलोक्य वीक्ष्य न शङ्कते किमयं मामिदं क्षुद्रमस्थि लिहन्तं दृष्टवा कथयिष्यतीति विचारणां न कुरुते । सारमाह । क्षुद्रस्तुच्छो जन्तुः परिग्रहफल्गुतां परिग्रहस्य स्वजिघृक्षितस्य वस्तुनः फल्गुतां निस्सारतां न गणयति न विभावयति क्षुद्रत्वात् । अत्राप्रस्तुतवृत्तान्तकथनात्प्रस्तुत-मूर्खजन-प्रतितेरप्रस्तुतप्रशंसालंकारः । हरिणीवृत्तम्- 'भवति हरिणी न्सौ म्रौस्लौगो रसाम्बुधिविष्टपैः' इति तल्लक्षणात् ।

संस्कृतसरलार्थः– यथा शुनकः क्षुद्रकीटाणां समूहैः व्याप्तं लालाऽर्द्रं निन्दितं घृणाजनकं मांसलेशशून्यं मानुषकीकसं प्रेमतया भक्षयन् पार्श्वस्थमिन्द्रमपि विलोक्य न लज्जते । यतो हि पामरजनो स्वीकृतवस्तुनि तुच्छत्वं क्षुद्रत्वात् न गणयति ।।९।।

हिन्दीः– कुत्ता कृमियों (कीड़ों) से संकुल, लार से आर्द्र, निन्दित, घृणाजनक, निरूपम रस से व्याप्त, मांस से रहित, मुनष्य की हड्डी को चूसता हुआ समीप में खड़े इन्द्र से भी लज्जित नहीं होता । उसी प्रकार पामरजन भी ग्राह्यवस्तु की असारता का परिगणन नहीं करता ।।९।।

---

१. 'विगन्धि' इत्यपि पाठः ।
२. 'खरास्थि' इत्यपि पाठः ।

English Translation– A dog is not at all afraid of the presence of Indra who is standing by, when he (the dog) is licking a bone which is full of worms and wet with saliva, loathsome, nauseative, fleshless and possessing a taste which cannot be compared to that of anything else, a mean fellow never realises his own meanness. (9)

शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरस्तत् क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधोऽधो गङ्गेयं[1] पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।।१०।।

अन्वयः (Prose Order)– स्वर्गात् शार्वं शिरः पतति शिरसः तत् क्षितिधरम् उत्तुङ्गान्महीध्रादवनिमवनेश्चापि जलधिम् सा इयं गङ्गा अधोऽधः स्तोकं पदमुपगता । विवेकभ्रष्टानां विनिपातः शतमुखो भवति ॥१०॥

नीतिपथः– शिर इति। स्वर्गाद् विष्णुलोकात्, शार्वं शर्वस्येदं महादेवसम्बन्धिशिरो लक्ष्यीकृत्येति शेषः । 'ईश्वर शर्व ईशानः' **इत्यमरः**। पतति शिरसो महादेवस्य ललाटात् तं प्रसिद्धं क्षितिधरं क्षितिं-धरतीति क्षितिधरस्तं हिमवन्तम् पर्वतं हिमालयं प्रति पतति । उत्तुङ्गादुच्चान्महिध्रात्पर्वतादवनिं भुवमुपगता । अवनेश्च भूमेरपि जलधिं समुद्रमुपगता । सेयं परिदृश्यमाना गङ्गा 'गङ्गा विष्णुपदी जन्हुतनया' **इत्यमरः,** स्तोकं क्षुद्रं पदमुपगता प्राप्ता । तात्पर्यमाह-विवेकभ्रष्टानां विवेकाद् ज्ञानात् भ्रष्टानां च्युतानां विवेकशून्यानामिति यावत् । स्थानभ्रष्टानाञ्च शतमुखो शतं मुखानि यस्य सः शतधेत्यर्थो विनिपातो भङ्गो अधोऽधः पतनं च भवति । विवेकयुक्तानां तु न । अतो विवेकान्न भ्रंशितव्यमिति भावः । अत्रानेकस्मिन्नाधारे क्रमेणैकस्या आधेयभूतायाः मन्दाकिन्याः स्थितिकथनात्पर्यायाख्योऽलंकारः । शिखरिणी वृत्तम् । लक्षणमुक्तम् ।

संस्कृतसरलार्थः– यथा मन्दाकिनी स्वर्लोकात्, शार्वं शिरमुपगता, शिरस्तः हिमवन्तं पर्वतं, हिमालयात् भुवं, पृथ्वीतः समुद्रं एवं क्रमेण उत्तरोत्तरं निम्ननिम्नतरं स्थानमुपागता । एवमेव विवेकशून्यानां शतधा अधोऽधःपतनं भवति ॥१०॥

हिन्दी– जिस प्रकार गंगा स्वर्ग से महादेव के शिर पर गिरती है, वहाँ से

---

१. 'अथो गङ्गा सेयं' इत्यपि पाठः ।

हिमालय पर्वत पर और उच्चपर्वत से पृथ्वी पर तथा पृथ्वी से समुद्र में गिरती है। इस प्रकार उसका क्रमशः पतन ही होता गया। तात्पर्य यह है कि स्थानभ्रष्ट मनुष्यों का सैकड़ों प्रकार से अधःपतन होता है ॥१०॥

English Translation– The holy Ganges falls from heaven upon the head of Mahadeva. From there it falls upon that well known mountain, (Himalayas) from that lofty mountain, it falls down to the earth and from there it hurries towards the Ocean. Thus that will known Ganges gets lower and lower. Those who fall from the path of discrimination fall in a hundred ways. (10)

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण[1] सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदौ दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥११॥

अन्वयः (Prose Order)– हुतभुग्जलेन वारयितुं शक्यः सूर्यातपश्छत्रेण नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदौ गोगर्दभौ दण्डेन। व्याधिः भेषजसङ्ग्रहैः विषं विविधैः मन्त्रप्रयोगैः एवं सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधमस्ति मूर्खस्य औषधं नास्ति ॥११॥

नीतिपथः– शक्य इति। हुतभक् हुतं देवतोद्देशेन अग्नौ दत्तं होमद्रव्यं हविःपुरोडाशादि भुङ्क्त इति हुतभक् दहनः 'हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' **इत्यमरः।** अत्र तु लौकिकाग्निः गृहादिदाहकृदिति मन्तव्यम्। वह्निर्जलेन वारयितुं शमयितुं शक्यः। सूर्यातपः सूर्यस्य रवेरातपो द्योतश्छत्रेण वारयितुं शक्यः। 'प्रकाशो द्योत आतपः' **इत्यमरः।** नागेन्द्रो गजराजो निशिताङ्कुशेन निशितस्तीक्ष्णश्चा-सावङ्कुशस्तेन। समदौ मदेनसह वर्तमानौ उत्कटमदौ। गोगर्दभौ गोश्च वृषभश्च गर्दभश्च रासभश्चेति। दण्डेन यष्ट्या। व्याधीः रोगश्च भैषजसंग्रहैः भेषजानामौषधानां संग्रहाः प्रयोगास्तैः। विविधैर्नानाप्रकारैः मन्त्रप्रयोगैर्मन्त्राणां सर्पाद्यवरोधकानां शब्दविशेषाणां प्रयोगैर्व्यवहारैर्विषम् हालाहलम्। सर्वस्य वस्तुनः शास्त्रविहितं शास्त्रैर्वेदादिभिर्विहितं शास्त्रविधिचोदितं निरूपितमौषधमुपायोऽस्ति परं मुर्खस्यौषधं नास्ति किंचित्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥११॥

---

१. 'कच्छूर्पेण' इति पाठान्तरम्।

संस्कृतसरलार्थः– यथा लौकिकाग्निः उदकेन, धर्मः छत्रेण, गजश्रेष्ठतीक्ष्णाङ्कुशेन, समदौ वृषभरासभौ दण्डेन, व्याधिः औषधसग्रहेण, विषं विविधमन्त्रप्रयोगेण शाम्यति, एवं सर्वस्य शास्त्रविधिचोदितं औषधमस्ति। परं मूर्खस्य औषधं न क्वापि श्रूयते ॥११॥

हिन्दी– अग्नि जल से, सूर्य की धूप छाते से, हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से, मदोन्मत्त बैल और गधे को दण्डे से, रोग का निदान औषधों के सेवन से, विष का उपशमन अनेकमंत्रों के प्रयोग से, इस प्रकार शास्त्रों में सबकी औषधि का कथन है परन्तु मूर्ख की औषधि का कथन नहीं है ॥११॥

English Translation– A fire can be controlled with water. Sunshine with an umbrella, an elephant with a sharp goad, intoxicated cow and ass with a staff, a disease can be cured by using the medicines properly, and a poison can be warded off by means of using efficacious spells. The books of the learned have prescribed a medicine for everything but none for a fool. (11)

साहित्यसङ्गीतकलानभिज्ञ[१]ः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥१२॥

अन्वयः (Prose Order)– (जनः) साहित्यसंगीतकलानभिज्ञः पुच्छविषाण-हीनः साक्षात्पशुः (एव अस्ति)। (यतो हि सः) तृणन्न खादन्नपि जीवमानस्तत्पशूनां परमं भागधेयम् ॥१२॥

नीतिपथः– साहित्येति। साहित्यञ्च काव्यशास्त्रञ्च संगीतञ्च गानञ्च कलाश्च चतुष्षष्टिस्तदनभिज्ञो मूर्ख इत्यर्थः। जन इति विशेष्यमध्याहार्यम्। पुच्छविषाणहीनः पुच्छञ्च लाङ्गूलञ्च विषाणौ च शृंगे च तैर्हीनः शून्यः साक्षात्प्रत्यक्षः पशुरेव अस्ति। यतो हि सः तृणं घासन्नखादन्न भक्षयन्नपि यज्जीवमानः प्राणन् श्वसन् वा तिष्ठति, 'तृणं घासो यवसम्' **इत्यमरः**, तत् परमं महद्भागधेयं सौभाग्यम् पशूनाम्। 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः' **इत्यमरः**। साहित्यसंगीतकलानभिज्ञाः यदि घासं भक्षयेयुः तर्हि पशवः घासाभावान्मृतिमेवोपगच्छेयुः।

संस्कृतसरलार्थः– यः जनः साहित्यशास्त्रे संगीतशास्त्रकलासु च अनभिज्ञः

---

१. 'विहीनः' इति पाठान्तरम्।

सः मूर्तिमान् शृंगपुच्छविरहितः पशुरेवास्ति । यतो हि सः घासं न भक्षयन् अपि जीवति तत् पशूनां सौभाग्यमेवास्ति । अन्यथा साहित्यसंगीतकलानभिज्ञाः यदि घासं भक्षयेयुः तर्हि पशवो घासाभावान्मृतिवोपगच्छेयुः ॥१२॥

हिन्दी– जो मनुष्य साहित्य तथा संगीत आदि कलाओं से अपरिचित है वह पूछ तथा सींगों के बिना साक्षात् मूर्तिमान् पशु ही है। घास न खाकर भी ऐसा मनुष्य जो जीता है तो यह पशुओं का परम सौभाग्य है ॥१२॥

English Translation– One who doesn't know literature, music and other fine arts is evidently a beast but lacking only so far as he has not got tail and horns. (12)

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।१३।।

अन्वयः (Prose Order)– येषां न विद्या, न तपो, न दानं, न ज्ञानं, न शीलं, न गुणः न धर्मः ते मर्त्यलोके भूवि भारभूताः (सन्ति) मनुष्यरूपेण मृगाः चरन्ति ॥१३॥

नीतिपथः– येषामिति। येषां जनानां सविधे न विद्या, ज्ञानं नास्ति न तपो धर्मकार्येषु कष्टसहनं न दानं पात्रेभ्यः साहाय्यकरणं न च ज्ञानं विवेको न शीलं वृत्तं न गुणः कश्चित् सौजन्यादिसद्भावोऽपि नास्ति न च धर्मः कर्तव्यपालनं ते मर्त्यलोके मर्त्यानां मरणधर्माणां मनुष्याणां लोके भुवने भुवि पृथिव्यां भारभूता भाररूपाः सन्तो मनुष्यरूपेण मनुष्याणां जनानां रूपेणाकारेण मृगाः पशव एव कर्मणा तु चरन्ति कालं यापयन्ति धिक् तज्जन्मानीत्यर्थः । उपजातिर्वृत्तम् ।

संस्कृतसरलार्थः– ये जनाः विद्या तपसा दानेन विवेकेन सद्वृत्तेन, सौजन्यादि-गुणैः धर्मेण च विहीनाः सन्ति ते अनित्यात्मकेऽस्मिन् भुवने भारभूताः सन्ति । ते अस्यां पृथिव्यां भाररूपाः सन्तो मानवरूपेण पशवः एव भ्रमन्ति, तेषां जन्म जगति निरर्थकमेव ॥१३॥

हिन्दी– जिन मनुष्यों के पास न तो विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न सदाचार है और न धर्म है, वे इस पृथ्वी पर भारभूत हैं और मनुष्य के रूप में वे पशु के समान व्यर्थ ही विचरण कर रहे हैं ॥१३॥

English Translation– Those in whom there is no learning, penance, charity, knowledge, character, any

virtue or a sense of duty are a burden for the earth in this mortal world and wander here apparently men but in reality they are beasts. (13)

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कःसुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।१४।।

अन्वयः (Prose Order)– वनचरैःसह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम्, (किन्तु) मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि न वरम् ।।१४।।

नीतिपथः– वरमिति। वनचरैः वनेषु काननेषु चरन्ति विहरन्ति तैस्सह । पर्वतदुर्गेषु पर्वताश्च दुर्गाश्च तेषु शैलदुर्गमप्रदेशेषु भ्रान्तं भ्रमणं वरं मनाक् प्रियं परं मुर्खजनैः बालिशैः सम्पर्कः सम्प्रयोगः सुरेन्द्रभवनेष्वपि सुरेन्द्रस्य देवराजस्य भवनेष्वपि प्रासादेष्वपि स्थितिः न शोभना । अनुष्टुप् छन्दः ।

संस्कृतसरलार्थः– वनवासिभिः सह पर्वत-दुर्गमप्रदेशेषु वासः यथाकथञ्चि-च्छोभनः। परं बालिशैसह पुरन्दर प्रासादेषु वासः न उचितः ।।१४।।

हिन्दी– वनवासियों के साथ पर्वतों और दुर्गम मार्गों में भ्रमण कर लेना अच्छा है परन्तु मूर्ख लोगों के साथ इन्द्र के भवनों में रहना सुखावह नहीं है ।।१४।।

English Translation– It is better to wander among mountains and difficult passages than to live in the palace of Indra with fools. (14)

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयाऽऽगमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्थं[1] विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः ।।१५।।

अन्वयः (Prose Order)– शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्याताः कवयो यस्य प्रभोर्विषये निर्धना वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम्हि कवयोऽर्थं विनापीश्वरः हि कुपरीक्षकाः कुत्स्याः स्युः यैर्मणयोऽर्घतः पातिताः ।।१५।।

नीतिपथः– शास्त्रेति। शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शास्त्रैः व्याकरणादिभिः शब्दशुद्धिसौन्दर्यशिक्षकैः ग्रन्थैरुपस्कृतैः परिशोधितैः शब्दैः सुन्दर्यो गिरो वाण्यो

---

१. 'सुधियस्त्वर्थं' इत्यपि पाठः ।

येषां ते 'निदेशग्रन्थयोः शास्त्रम्' **इत्यमरः** । शिष्यप्रदेयागमाः शिष्येभ्योऽन्तेवासिभ्य प्रदेया व्याख्यानरूपेण प्रदातुं योग्या आगमाः शास्त्राणि येषां ते तथोक्ताः 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' **इत्यमरः** । अत एव विख्याताः सर्वत्र प्रसिद्धाः कवयो विद्वांसः यस्य प्रभो राज्ञो विषये देशे निर्धना धनहीनाः सन्तः वसन्ति तिष्ठन्ति तद् वसुधाधिपस्य वसुधायाः पृथिव्याः अधिपस्य स्वामिनो जाड्यं मान्द्यम् मूर्खत्वमित्यर्थः । कवयस्तु विद्वांसस्त्वर्थं धनं विनापीश्वराः प्रभव एव । विद्याया एव तेषां महाधनत्वादितिभावः । यैर्हि मणयो बहुमूल्यानि रत्नान्यर्घतो मूल्यात् पातिताः बहुमूल्या मणयोऽल्पमूल्याः कृता इत्यर्थः । तेषां वास्तविकं मूल्यमस्थापयित्वा मिथ्याभूतं क्षुद्रतरं मूल्यं व्यवस्थापितं ते कुपरीक्षकाः कुत्स्या निन्दनीयाः । रत्नानां मूल्यव्यवस्थापका एव कुत्स्या न तु मणयः । राजभिर्विद्यावतामुत्साहो वर्धनीयो यथा तद्राज्येषु विद्याप्रचारः सुघटतामित्यर्थः । अतः श्रेयः कामैः प्रभुभिस्तन्मनोरथपूरकैरेव भवितव्यमिति तात्पर्यम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । लक्षणं तूक्तम् ॥१५॥

संस्कृतसरलार्थ :– सर्वत्रप्रसिद्धाः विद्वांसः यस्य राज्ञः देशे धनहीनाः सन्तः वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य हैन्यम् । विद्वांसस्तु धनं विनाऽपि समर्थाः सन्ति । यदि कुपरीक्षकाः बहुमूल्यमणेः यथावत् मूल्यं न कथयन्ति अपितु मिथ्याभूतं क्षुद्रतरं मूल्यं व्यवस्थापयन्ति तत्तेषामेव कुत्सितत्वम् । विद्वांसस्तु कुपरीक्षकोपहतमणय इव न कुत्स्या इति ॥१५॥

हिन्दी :– जो शास्त्रों से भूषित, शब्दों से मनोहर वचनों वाले तथा शिष्यों को देने योग्य विद्यावाले प्रसिद्ध, कवि (विद्वान्) किसी राजा के राज्य में निर्धन होकर रहते हैं तो यह उस राजा (शासक) की मूर्खता है । विद्वान् तो धन के विना भी राजा ही है ।क्योंकि जिन कुपरीक्षकों ने महार्हमणि को उचित मूल्य से निम्न मूल्य पर लगाया वे कुपरीक्षक ही निन्दनीय है (वे महार्घ मणियाँ नहीं) ॥१५॥

English Translation :– It is the folly of a king that he allows well known poets to remain poor in the kingdom. The poets whose speeches have been made charming with the knowledge of different shastras, and possess a wisdom worth giving to their disciples are, nothing short of monarchs, even without wealth. Those jewellers are to be blamed who undervalue a diamond. The diamond does not lose the real value thereby. (15)

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः ! कस्तैः सह स्पर्धते ।।१६।।

अन्वयः (Prose Order)– यद् हर्त्तुर्गोचरं न याति सर्वदा किमपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं परां हि वृद्धिं प्राप्नोति, येषां विद्याख्यमन्तर्धनं कल्पान्तेष्वपि निधनं न प्रयाति नृपास्तान् प्रति मानमुज्झत तैः सह कः स्पर्धते ॥१६॥

नीतिपथ :– हर्तुरिति। यद्विद्याख्यं धनं हर्तुश्चौरस्य गोचरं विषयं वशं वा न प्रयाति न गच्छति रजतादिवच्चौरेण हर्तुं न शक्यत इत्यर्थः । यच्च सर्वदा कालत्रयेऽपि किमप्यनिर्वाच्यं शं कल्याणं सुखं वा पुष्णाति प्रवर्धयति। अर्थिभ्यो याचकेभ्यः प्रतिपाद्यमानं दीयमानमनिशं निरन्तरं परामुत्कटां हि वृद्धिं समृद्धिं प्राप्नोति, व्यये कृते वर्धत एव विद्येति वचनात्। साधारणं धनं तु व्यये कृते ह्रासमुपयाति न तथा विद्याधनममिति यावत्। येषां विदुषां विद्याख्यं विद्येत्याख्या नाम यस्य तत् विद्यानामकमन्तर्धनम् अभ्यन्तरस्थवित्तं सुगुप्तधनं वा। कल्पान्तेष्वपि कल्पानां सृष्टेरायुषामन्तेष्वपि समाप्तिष्वपि निधनं नाशं न प्रयाति न प्राप्नोति न नश्यतीत्यर्थः । अतस्तान्विद्याधनान्प्रति हे नृपाः हे राजानः मानं गर्वं दुराग्रहमितियावत्, त्यजत परिहरत, तैः सह को जनः स्पर्धते साम्यमेति न कोऽपीत्यर्थः । ततस्ते सदा बहुमानेन माननीया इत्यर्थः । अत्र प्रसिद्धधनादुपनानादुपमेयस्य विद्याधनस्याधिक्य-कथनाद्व्यतिरेकालंकारः । अधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा । व्यतिरेकः' इति दर्पणोक्ततल्लक्षणात्। वृत्तं पूर्ववत् ॥१६॥

संस्कृत सरलार्थ :– यद्विद्याख्यं धनं चौरस्य गोचरं न याति, सर्वदा अनिर्वाच्यं सुखं प्रवर्धयति, सदा विद्यार्थिभ्यो व्याख्यायमानमभ्युच्छ्रयं प्राप्नोति, प्रलयेष्वपि नाशं न प्राप्नोति तद्विद्याभिधानं धनं येषां विदुषां वर्तते तान् प्रति हे राजानः! दुराग्रहं त्यजत। तैर्विद्वद्भिः सह कः पुमान् निगृह्णाति ॥१६॥

हिन्दी :– जो विद्यारूप धन चोर को लभ्य नहीं है, जो सर्वदा अनिर्वचनीय सुख प्रदान करता है, याचक (विद्यार्थियों) को दिये जाने से सदैव अभ्युन्नति को प्राप्त होता है, ऐसा विद्वानों का विद्यारूपी सुगुप्तधन है जो कल्पों का अन्त होने पर भी नष्ट नहीं होता है। इस हेतु हे राजाओं ! उन विद्वानों से दुराग्रह मत करो, उन विद्वानों की समता संसार में कौन कर सकता है ? ॥१६॥

English Translation :– Knowledge is the wealth of the learned. This wealth is quite different from the ordinary one. It can not be stolen away by a thief and always brings a welfare. And this treasure of knowledge is not exhausted by giving away, but on the contrary, it attains an immense growth, if it is imparted to those who need it. It does not perish at all even at the time of destruction of the universe O king ! therefore give up your stately pride before possessed of such a treasure. Who can, in this world, compete with them ? (16)

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि ।
अभिनवमदरेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ।।१७।।

अन्वयः (Prose Order)– अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः । लघु तृणमिवलक्ष्मीस्तान् नैव संरुणद्धि । अभिनवमदरेखाश्यामगण्डस्थलानां वारणानां बिसतन्तुः वारणं न भवति ।।१७।।

नीतिपथ :– अतः विद्वत्सु बहुमानाचरणपरेणैव वर्तितव्यमित्ति राजानं प्रेरयति–**अधीति** । हे वसुधाधिप ! अधिगतपरमार्थान् अधिगतो विज्ञातः परमार्थो मोक्षतत्त्वं यैस्तान् अथवा पण्डितान् प्राप्तपुरुषार्थान् विदुषः मावमंस्था मा अवमानय न तिरस्कुरु इत्यर्थः । कुतः तृणमिव लघु ग्रासपत्रमिव स्तोकं लक्ष्मीः त्वदीयसम्पतिः श्रीस्तान् पण्डितान् नैव संरुणद्धि ईषदपि रोद्धुं न पारयति । 'शष्पं बालतृणं घासं यवसं तृणमर्जुनम्' **इत्यमरः** । ते लक्ष्म्यर्थं भवदाज्ञावशवर्तिनो भूत्वा न कदापि कुकृतिं करिष्यन्ति । इममेवार्थं दृष्टान्तेन स्पष्टीकरोति-अभिनवमदरेखाश्यामगण्डस्थलानाम् अभिनवा नूतनाश्च ता मदस्य लेखा रेखाः ताभिः श्यामानि गण्डस्थलानि कपोलभित्तयो येषान्तेषां नितान्तमुद्धतानां सर्वथानिरङ्कुशानां च वारणानां नागानां 'नागः कुञ्जरो वारणः' **इत्यमरः,** बिसतन्तुर्विसस्य मृणालस्य कोमलस्तन्तुः वारणं प्रतिबन्धकभूतः बन्धनसाधनं न भवति । 'मदो दानम्' **इत्यमरः** । ते तु स्थूलैः पुष्टैः दृढैश्च लोहशृङ्खलैरेव बद्धुं शक्यन्ते न तु मृदुना मृणालत्तन्तुना दुराग्रहेन नापि लक्ष्मीप्रदानेन न, यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत् इति न्यायेन विनयेनैव विद्वांसो जेया नाविनयेन ।

दृष्टान्तालंकार: । मालिनीवृत्तम्ननमययुतेन मालिनी भोगिलोकैः । इति तल्लक्षणात् ॥१७॥

संस्कृत सरलार्थ :– भो राजन्! अधिगतब्रह्मतत्त्वज्ञान् पण्डितान् मा अवमानय। यत: ग्रासपत्रमिव स्तोकं त्वदीयसम्पति: तान् तत्त्वज्ञान् तृणमिव रोद्धुं न शक्ष्यति। यतो हि मदनसिक्तगण्डस्थलानां मतङ्गजानां मृणालसूत्रं प्रतिबन्धकभूत: न भवति ॥१७॥

हिन्दी :– जिन्होंने वस्तु के यथार्थ तत्त्व को जान लिया है ऐसे पण्डितों का अपमान मत करो। तिनके के समान क्षुद्र लक्ष्मी उन विद्वानों को रोक नहीं सकती। (आप ही सोचिए) नूतनमद की धाराओं से श्याम कपोलों वाले मदान्ध हाथियों को कोमल कमल नाल के सूत्र से नहीं बांधा जा सकता ॥१७॥

English Translation :– Do not disgrace the learned men who know the great Truth. The wealth which to them is like a blade of grass, cannot bind them. The elephants whose wall-like temples have become dirty on account of the fresh flowing lines of rut cannot be bound with a fine thread of Bisa. (17)

अम्भोजिनीवननिवास[1]विलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥१८॥

अन्वयः (Prose Order)– नितरां कुपितो विधाता हंसस्याम्भोजिनीवननिवास विलासमेव हन्ति। अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं तु असौ न समर्थः ॥१८॥

नीतिपथ :– विदुषां महान्महिमाऽपहरणे ब्रह्मापि न शक्त इति दृष्टान्तेनाह- **अम्भोजिनीति**। नितरामतिमात्रं कुपित: केनचिद्धेतुना क्रुद्धः सन् विधाता ब्रह्मा। अत्रापि शब्दो गम्यस्तेनान्ये क्षुद्रा राजादय: किमुतेत्यर्थ आयाति। हंसस्याम्भोजिनीवननिवासमेवाम्भोजिनीनां कमलिनीनां वने यो विहार: क्रीडा स एव विलासो भोगस्तमेव हन्त्यपहरति। नितरामतिशयेन हन्ति नाशयति, नान्यत्। परमस्य हंसस्य मरालस्य

१. 'विहार' इत्यपि पाठः।

दुग्धजलभेदविधौ दुग्धश्च जलं च तयो: भेदस्य पृथक्करणस्य विधावनुष्ठाने प्रसिद्धां प्रख्यातां वैदग्ध्यकीर्तिं विदग्धस्य भावो वैदग्ध्यं चातुर्यं तेन या कीर्तिर्यशस्तत्त्वपहर्त्तुं चौरयितुं असौ ब्रह्मापि विधाता न क्षम: समर्थ: । 'यश: कीर्ति: समज्ञा च' **इत्यमर:** । धनाढ्या राजानो वा विद्वद्भ्यो धनमन्यविधमादरं वा न दत्त्वा तेषां सुखानि न्यूनतां नेतुं शक्नुवन्ति परं तेषां विद्याविज्ञानजन्यमानन्दन्तु न कोऽपि लेशतश्छेत्तुं शक्नोति । अतो निष्कोपेन भवितव्यं विद्वत्सु राज्ञेति तात्पर्यम् । अत्राप्रकृतविधातृवृत्तान्त-कथनात्प्रस्तुतराजविद्वज्जनप्रतीतेरप्रस्तुतालंकार:. । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१८॥

संस्कृतसरलार्थ :– केनचिद्धेतुना क्रुद्ध: सन् विधाता हंसानां विहारविलासमेव नाशयति नान्यत् किं त्वसौ ब्रह्मा तेषां नीरक्षीरविवेकविषये प्रख्यातां कीर्तिं चौरयितुं न समर्थ: भवति । एवं कुपितो राजा धनमन्यविधमादरं वा न दत्त्वा पण्डितानां सुखानि न्यूनतां नेतुं शक्नुवन्ति न तु तेषामशेषविद्यापरिशीलनजनितचातुर्यम्, ते यत्र गमिष्यन्ति तत्रैव प्राभविष्यन्ति ॥१८॥

हिन्दी :– अत्यन्त क्रोधित होकर विधाता भी अधिक से अधिक हंसो के कमलिनियों के वन में निवासरूप विलास को ही नष्ट कर सकता है किन्तु हंस की 'दूध का दूध और पानी का पानी' कर देने की जो जगद्विख्यात चतुरता है उसको विधाता भी नष्ट नहीं कर सकता ॥१८॥

English Translation :– Even the Creator of the universe, if angry, can only rob a goose of its residence in the flocks of lotuses. But even he cannot remove the fame of its cleverness in differenciating water from the milk. (18)

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, नालङ्कृता मूर्द्धजा: ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु[१] भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम् ॥१९॥

अन्वय : (Prose Order)– पुरुषं केयूराणि न भूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वला हारा न, स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, नालङ्कृता मूर्धजा:, या संस्कृता धार्यते सा एका वाणी पुरुषं समलङ्करोति भूषणानि क्षीयन्ते वाग्भूषणं सततं भूषणं खुल ॥१९॥

---

१. 'क्षीयन्तेऽखिल' इत्यपि पाठ: ।

नीतिपथ :– केयूराणीति । पुरुषं जनं केयूराणि अङ्गदानि न भूषयन्ति नालंकुर्वन्ति । 'केयूरमङ्गदं तुल्ये' **इत्यमरः ।** चन्द्रोज्ज्वला चन्द्र इव उज्वला विधुविमला, घन इव श्यामो घनश्याम इत्यादिवदुपमिततत्पुरुषसमासः । न स्नानं मार्जनं न भूषयति । न विलेपनं मलयजादिकृतमङ्गरञ्जनं न भूषयति । कुसुमं मालतीचम्पकादिपुष्पमपि न भूषयन्ति । 'प्रसूनं कुसुमं' **इत्यमरः ।** अलङ्कृता पुष्पमाल्यादिना सम्यक् प्रसाधिता मूर्धजाः केशाः अपि न भूषयन्ति । पुरुषमिति सर्वत्रानुषङ्गः । किन्तर्हि भूषयतीत्याह-या संस्कृताख्या धार्यते ज्ञायते सम्यक् सा वाणी देवगीरित्यर्थः । सैवैका पुरुषं समलङ्करोति भूषयति । केयूरादीनां तेषां क्षयिष्णुत्वान्न तथात्वमित्याह-भूषणानि केयूरादिमण्डनान्तराणि क्षीयन्ते कालक्रमेण नश्यन्ति । खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे । वाग्भूषणं संस्कृतवाग्रूपभूषणं तु सततं नित्यं भूषणमस्ति । कदापि न नश्यतीति भावः । व्यतिरेकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१९॥

संस्कृतसरलार्थ :– पुरुषं केयूराणि, धवलतरा हाराः स्नानं, विलेपनं, पुष्पं, सम्यक् प्रसाधिताः शिरोरुहा अपि न भूषयन्ति । किंत्वेका केवला वाणी पुरुषं सम्यग्भूषयति । कालक्रमेण लोकप्रसिद्धानि भूषणानि हीनप्रभाणि जायन्ते सर्वथा वा नश्यन्ति । परं वाग्भूषणं नित्यभूषणं भवति । कदापि न नश्यतीति भावः । अतः वाग्भूषणाय सर्वैः प्रयतनीयम् ॥१९॥

हिन्दी :– मनुष्य को न तो बाहुभूषण आभूषित करते हैं, और नहीं चन्द्रनिर्मल हार न, स्नान, न चन्दनानुलेपन पुष्प और न केशों का अलंकृत विन्यास । एक मात्र संस्कारित वाणी ही धारण करने पर मनुष्य को अलंकृत करती है । काल के प्रवाह में सभी आभूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं परन्तु वाणी का भूषण सदा भूषण ही रहता है ॥१९॥

English Translation :– Ornaments do not adorn a man, nor the moon-white necklaces give beauty to him. Neither do baths and embalmings, flowers, nor well-dressed hair adorn a man. Only a speech the bearing of a refined speech, adorns a man. The other ornaments waste away while the ornament of speech remains always. (19)

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने, विद्या परं दैवतं[१],
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं, विद्याविहीनः पशुः ।।२०।।

अन्वय : (Prose Order)– विद्या नाम नरस्याधिकं रूपम्। विद्या प्रच्छन्नगुप्तं धनम्। विद्या भोगकरी, यशःसुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः विद्या विदेशगमने बन्धुजनः। विद्या परं दैवतम्। विद्या राजसु पूजिता, धनं, नहि। विद्या विहीनः पशुः ॥२०॥

नीतिपथ :– विद्यां प्रशंसति-**विद्या नामेति**। विद्या नाम ज्ञानाख्यं किमपि जगद्विदितं वस्तु नरस्य मनुष्यस्य विद्यावतोऽधिकं वरतरं रूपं शरीररूपादित्यर्थः। किञ्च तत् प्रच्छन्नमतिगुप्तमन्तर्धनं हृदयगुहायां निक्षिप्तं केनाप्यचौर्यं धनमर्थराशिः। विद्या भोगान् सांसारिकसुखानि राज्यादीनि करोति सुनोत्युत्पादयति तथाभूता यशःसुखकरी यशश्च कीर्तिञ्च सुखं चानन्दञ्च करोति जनयति तादृशी किञ्चेयं विद्या गुरूणामपि गुरुः। गुरुभ्योऽप्यधिकतरं पूज्या विद्याकृत एव गुरवः पूज्यन्ते। न कश्चिन्मूर्खं सत्कुरुते। तेन विद्यैव गुरूणामपि गुरुरिति। विदेशगमने प्रवासे विद्या बन्धुजनः स्निग्धजनवत्सहायिका भवति। तदुक्तम्– 'स्वदेशमित्रं परदेशबन्धुं विद्यासुधां ये पुरुषा पिबन्ति'। विद्या परा देवता परमात्मभूता। मोक्षदायकत्वादिति भावः। राजसु नृपेषु पूज्यते प्रशस्यते। धनन्तु नहि न कदापि पूज्यं भवति तस्माद् यत एवं विधं गौरवं विद्यायास्ततो विधाविहीनः विद्यया ज्ञानेन रहितो जनः पशुः पशुवद् बोद्धव्यो व्यवहर्तव्यश्च। निरवयवमालारूपकालङ्कारः। शार्दुलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– विद्या नरस्य विद्यावतोऽधिकं वरतरं रूपमस्ति। तत् अतिगुप्तमन्तर्धनं हृदयगुहायाम् अस्ति। विद्या भोगान् करोति। विद्या यशसः सुखस्य च सम्पादनकरी तादृशी किञ्चेयं विद्या गुरूणामपि गुरुः। प्रवासे विद्या सुहृज्जनवत्सहायिका भवति। विद्या परमात्भूता अस्ति। विद्यैव राजमध्ये प्रशस्यते नहि धनं पूज्यते। यतः एवं विधं गौरवं विद्यायास्ततो विद्याविहीनः जनः पशुवद् एवास्ति ॥२०॥

हिन्दी :– मनुष्य का विद्या नामक एक महनीय रूप है और यह अतिगूढ आन्तरिक ज्ञान रूप धन है। विद्या, राज्य– यशादिभोगों को देनेवाली तथा यश और सुख को उत्पन्न करनेवाली है। यह गुरुओं की भी गुरु है। विदेश गमनावसर

---

१. 'परादेवता' इत्यपि पाठः।

में यह बन्धु है। विद्या परमात्मभूत है। विद्या ही राज्य में पूजित होती है धन नहीं। इस हेतु विद्या से हीन व्यक्ति पशुवत् है ॥२०॥

English Translation :– Here is one greater ornament namely knowledge. This is an internal and hidden knowledge-treasure. It produces comforts, fame and pleasures. It is a preceptor of preceptors, When one is in unknown lands it is in Vidya or knowledge that has got a relation. Vidya is the supreme deity. Among kings knowledge alone is honoured and not wealth. There fore one who is destitute of learning should be considered a beast. (20)

क्षान्तिश्चेत्कवेचन किं, किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं, यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः, किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः, सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥२१॥

अन्वय : (Prose Order)– देहिनां क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम्, क्रोधोऽस्ति चेत् अरिभिः किम्। ज्ञातिश्चेत् अनलेन किम् यदि सुहृदस्ति दिव्यौषधैः किम् फलम्। यदि दुर्जनाः सर्पैः किम्, यदि अनवद्या विद्या धनैः किमु। चेद्व्रीडा भूषणैः किमु। यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्॥२१॥

नीतिपथ :– क्षान्तिरिति। देहिनां प्राणिनां क्षान्तिः तितिक्षा क्षमा वा अस्ति चेत् कवचेन वर्मणा किम्। 'क्षान्तिः तितिक्षा' **इत्यमरः**। शरीररक्षकलोहादियंत्रेण किं कार्यमित्यर्थः। क्षान्त्यैव शरीररक्षणं जनः कर्तुं शक्तस्तस्मात् किं तेन धृतेन कवचेन ? देहिनां मनुष्याणां क्रोधश्चेद्यदि तर्ह्यरिभिः किम्, क्रोध एव नरं हन्यादिति निरपेक्षाः शत्रव इति भावः। 'कोपक्रोधाऽमर्षरोष' **इत्यमरः**। ज्ञातिः स्वाः जनाः यदि सन्ति तर्ह्यनलेनाग्निना किम्। 'सगोत्रबांधवज्ञातिबंधुस्वस्वजनाः समाः' **इत्यमरः**। ज्ञातय एवं नितरां दहेयुरिति काऽवश्यकताऽग्नेः। यदि सुहृन्मित्रमस्ति तर्हि दिव्यौषधैर्दिव्यानि दिवि भवानि दिव्यानि स्वर्गीयाणि बहुमूल्यानि प्रभावशालीनि भगीरथप्रयत्नसाधितानि च यान्यौषधानि भेषजाः तैः किम् फलं किम्प्रयोजनम्। सुहृद एव सर्वरोगनिवर्तकाः स्युरिति निष्फला ओषधयः। यदि दुर्जना दुष्टाः सर्पैः किम्, तेषामेव प्राणापहारित्वादिति

भाव: । यद्यनवद्या वदितुं योग्या वद्या, न वद्या अवद्या नावद्यानवद्या प्रशंसनीया दूषणरहिता विद्या यद्यस्ति तर्हि धनैः किमु । तस्या एवाखिलभोगसाधकत्वादिति भाव: । किमु किं शब्द: प्रश्ने उकारस्तु विस्मये । व्रीडा लज्जा चेद् भूषणैराभूषणै: केयूरादिभि: किमु लज्जैव लज्जालुं जनं भूषयितुमलं स्यादत: किं भूषणै':? । यदि सुकविता सरसं काव्यं कर्तुं सामर्थ्यमस्तिचेद्राज्येन किम्– राजानोऽपि कवीन् गुरुन् मन्यन्ते निजकीर्तिप्रसारणस्य प्रधानसाधनत्वात् ।।२१।।

सरलसंस्कृतार्थ :– यदि देहिनां क्षमास्ति तर्हि कवचस्य आवश्यकता नास्ति । यदि क्षोभो वर्तते तर्हि अन्येषां शत्रूणामावश्यकता नास्ति । दायादोऽस्ति चेत् अग्नेरावश्यकता नास्ति । यदि खला: सन्ति तर्हि आशीविषै: किम् । यदि वेदवेदाङ्गाध्यात्मिकविद्या अस्ति तदा धनै: किम् । अकार्यप्रवृत्तौ मन:संकोचलक्षण-लज्जा अस्ति चेत् तर्हि अन्येषामाभूषणानां आवश्यकता नास्ति । यदि सत्पाण्डित्यम् वर्तते·तदा राज्यस्य कापि आवश्यकता नास्ति ।।२१।।

हिन्दी :– मनुष्यों में यदि क्षमा है तो कवच (कृत्रिम शरीररक्षक) की क्या आवश्यकता है, यदि क्रोध है तो शत्रुओं की क्या आवश्यकता, और यदि बन्धुजन हैं तो अग्नि की क्या आवश्यकता है । यदि मित्र हैं तो दिव्यौषधों से, यदि दुर्जन हैं तो सर्पों से, यदि निर्दोष विद्या है तो धन से, लज्जा है तो आभूषणों से, और यदि उत्तम काव्य निर्माण की शक्ति है तो राज्य से क्या प्रयोजन है ।।२१।।

English Translation :– If one is possessed of forgiveness then of what use is an armour to him ? If one has an evil temper then there in no need of enemies, If one has got his blood relations then he doesnot need fire to burn him. If you have got a friend then you do not require any heavenly cure for yourself. If one is surrounded by wicked persons, they are sufficient to bite him, deadly snakes are never needed to kill such a man. If you possess a stainless knowledge you need not have money. If you have a poetic genius you need not have a kingdom. (21)

दाक्षिण्यं स्वजने, दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने, नयो नृपजने, विद्वज्जने चार्जवम् ।

शौर्यं शत्रुजने, क्षमा गुरुजने, नारीजने[1] धूर्तता[2],
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ।।२२।।

अन्वय : (Prose Order)– स्वजने दाक्षिण्यं, परिजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यं, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, विद्वज्जने च आर्जवं, शत्रुजने शौर्यं, गुरुजने क्षमा, नारीजने धूर्तता, ये पुरुषाः एवं कलासु कुशलः तेषु एव लोकस्थितिः (अस्ति) ।।२२।।

नीतिपथ :– अथ विदुषां गुणवर्णनपूर्वकं लोकव्यवहारव्यस्थापकत्वमाह- **दाक्षिण्यमिति** । स्वजने स्वो निजो जनस्तस्मिन् स्वसेवकादौ दाक्षिण्यं रागः, परिजने भृत्यजनेषु विषये दया कृपा । दुर्जने खलजनेषु विषये सदा शाठ्यं विप्रियकारित्वम् । यक्षानुरूपो बलिरिति न्यायेन शठे शाठ्यं समाचरेत् । साधुजने साधुश्चासौजनः तस्मिन् साधुजने सज्जनेषु विषये प्रीतिः स्नेहः । आदर इति यावत् । नृपजने राजलोके नयो नीतिः । अन्यथा दण्डयेरन्निति भावः । विद्वज्जने सुपण्डितलोकेषु विषये आर्जवम् ऋजोभार्व आर्जवं सारल्यमवक्रता वा । शत्रुजने रिपुषु विषये शौर्यं पराक्रमः अन्यथा निपातयेरन्निति भावः । गुरुजने वृद्धेषु क्षमा सहिष्णुत्वमन्यथा शपेरन्निति भावः । नारीजने कान्ताजनेषु विषये धूर्तता चातुर्यं प्रागल्भ्यं वा । अन्यथा वशीकुर्युरिति भावः । ये पुरुषा जगत्येवमीदृशीषु कलासु चातुरीषु कुशलास्तेषु यथानियोगवित्स्वेव जनेषु लोकस्थितिर्लोकस्य सृष्टेः स्थितिराश्रयोऽवलम्बो वा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।२२।।

सरलसंस्कृतार्थ :– स्वजनेषु औदार्यं, भृत्यजनेषु कृपा, खलजनेषु विप्रिय-कारित्वं, शिष्टपुरुषे स्नेहः, राजसु नीतिः, सुपण्डितलोकेषु सारल्यं, शत्रुजनेषु पराक्रमः, पित्रादिषु सहिष्णुत्वं, कान्ताजनेषु चातुर्य-इत्येवमुक्तविधासु कलासु ये जनाः निपुणास्तेषु पुरुषेष्विव लोकस्थितिः अस्ति । त एव सज्जना लोके मर्यादां स्थापयन्ति । एवं भूतास्तु विद्वांस एव न त्वन्य इति ।।२२।।

हिन्दी :– स्वजनों में उदारता, परिजनों पर दया, दुष्टों के साथ सदैव दुष्टता, सज्जनों से प्रीति, राजाओं के साथ नीति, विद्वानों से सरलव्यवहार, शत्रुओं पर पराक्रम, वृद्धजनों के प्रति क्षमा, स्त्रियों के साथ चातुर्य-जो पुरुष इन कलाओं में निष्णात हैं, संसार उन्हीं पर टिका हुआ है ।।२२।।

---

१. 'कान्ताजने' इत्यपि पाठः ।
२. 'धृष्टता' इत्यपि पाठः ।

English Translation :– The world is up held by those who are perfect in the following :– (1) Generosity towards one's own relations (2) Merry for others (3) Wickedness towards rogues. (4) Love for goodmen (5) Policy or diplomacy for monarchs. (6) Unpretentious behaviour towards learned. (7) A valour for enemies. (8) Forbearance for elders and (9) Cleverness in dealing with women. (22)

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? ।।२३।।

अन्वय : (Prose Order)– कथय सत्सङ्गतिः पुंसां किन्न करोति, धियो जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्तिं तनोति ।।२३।।

नीतिपथ :– सम्प्रति सत्सङ्गतेः श्रेयस्करत्वमाह-**जाड्यमिति** । कथयाख्याहि सखे ! सत्सङ्गतिः सद्भिः श्रेष्ठैः सङ्गतिः सम्पर्कः पुंसां पुरुषाणां किं सुफलन्न करोति सम्पादयति ? सम्प्रति तानि सत्फलानि परिगणयति-धियो बुद्धेर्जाड्यं जडस्य भावो जाड्यं तत् मौर्ख्यमित्यर्थः । 'बुद्धिर्मनीषा धीषणा धीः' **इत्यमरः** । हरति निवारयति । वाचि वाण्यां सत्यं याथार्थ्यं सिञ्चति वर्षति । 'सिञ्चति' क्रिया प्रयोगेण सत्यस्यामृततुल्यता दर्शिता भवति । मानोन्नतिं बहुमानातिशयं दिशति प्रयच्छति । पापमघञ्च अपाकरोति दूरीकरोति । तथा चेतश्चितं प्रसादयति प्रहर्षयति । ज्ञानोपदेशादिनेति भावः । दिक्षु सर्वासु काष्ठासु सर्वेषु देशेष्वित्यर्थः । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा' **इत्यमरः** । कीर्तिं यशस्तनोति प्रसारयति । समुच्चयालंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् । लक्षणं तूक्तम् ।।२३।।

सरलसंस्कृतार्थ :– कथयसज्जनसमागमः पुसां किं श्रेयो न करोति, सर्वमपि श्रेयः करोत्येव । यथा एषा बुद्धेर्मान्द्यं हरति, वचने सत्यं वर्षति, बहुमानातिशयं प्रयच्छति किल्बिषं नाशयति, चित्तं प्रहर्षयति, सर्वेषु देशेषु यशः तनोति । अतस्तैरेव संगतिः कर्तव्या, न तु दुर्जनैरिति ।।२३।।

हिन्दी :– (हे मित्र !) कहिये, सत्संगति मनुष्यों को कौन-सा उत्तम फल नहीं देती ? (अर्थात् सभी कुछ सम्पादित कराती है) बुद्धि की जड़ता अथवा मन्दता को दूर करती है, वाणी में सत्य की वर्षा करती है, मान-प्रतिष्ठा की वृद्धि करती है, पाप को निवृत्त करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति को प्रसृत करती है ॥२३॥

English Translation :– O friend ! Tell me what good is not produced by the company of the good men ? It removes the bluntness of intellect and endows speech with truth. Increases one's respect and washes off sin. It pleases the heart and spreads one's fame wide through all the four quarters. (23)

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां[1] यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।२४।।

अन्वय : (Prose Order)– येषां यशःकाये जरामरणजं भयं नास्ति ते रससिद्धाः सुकृतिनः कवीश्वराः जयन्ति ॥२४॥

नीतिपथ :–जयन्तीति । येषां यशःकाये यश एव कायः तस्मिन् कीर्तिरूपे शरीरे जरामरणजं जरा च वार्धक्यञ्च मरणञ्च मृत्युश्च ताभ्यां जायते उत्पद्यत इति तथोक्तं भयं भीतिर्नास्ति । ते रससिद्धाः रसेषु शृंगारादिषु नवसु रसेषु सिद्धाश्चतुराः रसनिरूपणे सिद्धहस्ताः सुकृतिनः सुकृतमेषामस्तीति सुकृतिनः 'सुकृती पुण्यवान्धन्यः' **इत्यमरः** । पुण्यवन्तः कवीश्वराः कवीनामीश्वराः कविराजा महाकवयो वा जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते काव्यलिङ्गमलङ्कारः ॥२४॥

सरलसंस्कृतार्थ :– येषां कीर्तिशरीरे जरामरणजं भीतिर्नास्ति ते पुण्यवन्तः शृंगारादिषु नवसु रसेषु सिद्धाः प्रक्रान्तदर्शिनः महाकवयः सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ॥२४॥

हिन्दी :– जिनके यशरूपी शरीर को वृद्धावस्था और मृत्यु का भय नहीं है, उन पुण्यात्मा तथा रसनिरूपण में सिद्धहस्त महाकवियों की जय है ॥२४॥

English Translation :– Victorious are those blessed poets who are efficient in describing the nine literary sentiments, love, wonder etc; their fame is free from all dangers of death and senility. (24)

---

१. 'तेषाम्' इत्यपि पाठः ।

सूनुः सच्चरितः, सती प्रियतमा, स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो, निष्क्लेशलेशं मनः ।
आकारो रुचिरः, स्थिरश्च विभवो, विद्यावदातं मुखं,
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरो संप्राप्यते देहिना ।।२५।।

अन्वय : (Prose Order)– देहिना विष्टपहारिणीष्टदहरौ तुष्टे (सति) सच्चरितः सूनुः, प्रियतमा सती, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम्, अवञ्चकः परिजनो, निष्क्लेलेशं मनो, रुचिर आकारः, स्थिरश्च विभवो, विद्यावदातं मुखं च सम्प्राप्यते ।।२५।।

नीतिपथ :– सांसारिकसुखस्यादर्शान् दर्शयति-**सूनुरिति** । देहिना देहोऽस्यास्तीति देही मनुष्यस्तेन । विष्टपहारिणि विष्टपं जगत् हरति आकर्षति; इति विष्टपहारी तस्मिन्, 'विष्टपं भुवनं जगत्' **इत्यमरः** । इष्टदहरौ इष्टं ददातीति इष्टदः भक्ताभीष्टप्रदः । तथा च शत्रूणामभिलषितं द्यति खण्डयतीत्यपीष्टदः 'दोऽवखण्डने' इत्यस्मादपि व्युत्पादनीयः । इष्टदश्चासौ हरिर्विष्णुस्तस्मिंस्तुष्टे भक्तिवशेन पुण्यपरम्परया वा जनेन कृतया, प्रसन्ने सति सच्चरितः सच्चरितं यस्य सः शोभनाचारः सूनुः पुत्रः, 'आत्मजस्तनयः सूनुः' **इत्यमरः** । प्रियतमा अतिशयेन प्रिया प्रियतमा भार्या सती साध्वी । 'सती सांध्वी पतिव्रता' **इत्यमरः** । प्रसादोन्मुखः प्रसादार्थे उन्मुखः उद्यतः स्वामी यो हि जनेन वृत्यर्थं सेव्यते । स्निग्धं प्रेमपूर्णं मित्रमवञ्चकोऽप्रतारकश्छलरहितः । परिजनः कुटुम्बिजनः। निष्क्लेशलेशं क्लेशस्य लेशः क्लेशलेशो निष्क्रान्तः क्लेशलेशान्निष्क्लेशलेशं दुःखस्य नाममात्रेणापि रहितं मनश्चित्तं, रुचिरो रुचिं रातीति रुचिरः स्पृहाजनको रुचि + रा दाने इत्यस्माद्व्युत्पाद्यः । आकारः आकृतिः, स्थिरोऽक्षयश्च विभव ऐश्वर्यं विद्यावदातं विद्यया ज्ञानेनावदातं प्रकाशमानं च मुखम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।२५।।

सरलसंस्कृतार्थ :– विष्णौ इष्टदे प्रसन्ने सति मनुष्येण शोभनाचारः पुत्रः, साध्वी भार्या, प्रसन्नः प्रभुः, प्रेमपूर्णं मित्रं, छलरहितः कुटुम्बिजनः, दुःखरहितं चित्तं, स्पृहाजनकः आकारः, अक्षयः विभवः, ज्ञानेन प्रकाशमानं मुखमित्येतत् सर्वं प्राप्यते ।।२५।।

हिन्दी :– जगत् के स्वामी, इष्ट वस्तुओं के देनेवाले श्रीहरि के संतुष्ट होने पर मनुष्य सदाचारी पुत्र, पतिव्रता स्त्री, प्रसन्न स्वामी, स्नेही मित्र, शुभेच्छुः परिजन, क्लेशलेश रहित मन, सुन्दर आकृति, स्थायी सम्पत्ति, और विद्या के कारण प्रोज्ज्वल मुख प्राप्त करता है ।।२५।।

English Translation :– The following (blessings) are obtained when God, who is the sole monarch of heaven, and the giver of desires is pleased with one :– (1) A well-behaved son. (2) A chaste wife (3) A master who is always ready to do a favour. (4) An affectionate friend. (5) Such relations as do not deceive. (6) Mind not distressed in the least (7) A good appearance (8) An imperishable wealth. (9) And features shining with knowledge. (25)

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं, युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ।।२६।।

अन्वय : (Prose Order)– प्राणाघातात् निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, काले सत्यवाक्यं, शक्त्या प्रदानं, परेषां युवतिजनकथामूकभावः, तृष्णास्रोतोविभङ्गः, गुरुषु विनयः, च, सर्वभूतानुकम्पः, एष सर्वशास्त्रेषु अनुपहतविधिः सामान्यः श्रेयसां पन्थाः ।।२६।।

नीतिपथ :– गुणाधिक्ये को लाभ इत्याशंक्य तेषां श्रेयो हेतुत्वमाह- **प्राणेति।** प्राणाघातात् प्राणानां जीवनस्याघाताद् विच्छेदनात् हिंसाया इत्यर्थः, निवृत्तिरुपरमो वैमुख्यम् । परधनहरणे परेषामन्येषां धनस्यार्थस्य हरणेऽ पुरुषार्थपूर्वकमधर्मेण स्वायत्तीकरणे संयमो निग्रहः । काले समये सत्यवाक्यं सत्यञ्च तद् वाक्यं सत्यवचनं यद्वस्तु यथा द्रष्टं श्रुतं वा स्यात्तस्य तथैवान्यस्मै प्रकाशनं सत्यमिति । शक्त्या प्रदानं वित्तानुसारेण त्यागश्च । परेषामन्येषां युवतिजनकथामूकभावः परस्त्रीवृत्तान्तकथने मूकभावः तूष्णीं भावशीलत्वं च । तृष्णास्रोतोविभङ्गस्तृष्णा प्रतिक्षणं वर्धमाना प्रबलेच्छाभिलषिते सम्पन्नेऽपि नितरां वर्धते, तस्याः स्रोतोऽविच्छिन्नः प्रवाहस्तस्य विभङ्गो निरोधः । गुरुषु वयोवृद्धेषु विनयो नम्रता व्यवहारः । सर्वभूतानुकम्पा सर्वभूतेष्वशेषप्राणिष्वनुकम्पा कृपा । 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्' **इत्यमरः।** एषः सर्वेषु शास्त्रेषु अनुपहतविधिः अलुप्तकर्मानुष्ठानं सामान्यः सर्वसामान्यजनविहितः श्रेयसां पन्था अखण्डितैश्वर्या- दिश्रेयः प्राप्तिमार्गः । न त्वेतद्व्यतिरिक्तोऽन्योऽ स्तीत्यर्थः । स्रग्धरावृत्तम्–म्रभ्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति तल्लक्षणात् ।।२६।।

सरलसंस्कृतार्थ :– प्राणिहिंसाया निवर्तनं, परद्रव्यहरणे मनोरोधः, यथोचितसमये यथार्थभाषणं, वित्तानुसारेण त्यागः, परस्त्रीवृत्तान्तकथने मौनं, तृष्णाप्रवाहभङ्गः, वयोवृद्धेषु नम्रताव्यवहारः, सर्वप्राणिष्वनुग्रहभावः इत्ययं सर्वशास्त्रेषु कथितः अखण्डितैश्वर्यादिश्रेयः प्राप्तिमार्गः अस्ति ॥२६॥

हिन्दी :– हिंसा से निवृत्ति, परद्रव्यापहरण से विमुखता, कालोचित सत्यवचन, धन के अनुसार दान, परस्त्री चर्चा में मौन, तृष्णा के प्रवाह का संरोध, पूज्यजनों के साथ विनय का व्यवहार, सर्वप्राणियों पर कृपा भाव यह समस्त प्रकार के कल्याणों को प्राप्त करने का एकमात्र ऐसा उपाय है जिसका समस्त शास्त्रों में एक सा विधान प्राप्त होता है ॥२६॥

English Translation :– To practise the following eight dietates is a common way to obtain all sorts of blessing:– This is the only way that has been unanimously prescribed by all the sacred books. (1) Causing no pain to others. (2) Not coveting another's wealth. (3) Truthfulness (4) Charity at proper times acccording to one's means (5) Abstaining from praising the wives of others. (6) Absence of greed. (7) Modesty in the presence of elders. (8) Pity for all creatures (26)

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्यय विघ्नविहता[1] विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि[2] प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना[3] न परित्यजन्ति ॥२७॥

अन्वय : (Prose Order)– नीचैः विघ्नभयेन खलु न प्रारभ्यते, मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति । उत्तमजनाः विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः अपि प्रारब्धं न परित्यजन्ति ॥२७॥

नीतिपथ :– प्रारभ्यत इति । नीचैरधमैर्विघ्नभयेन अन्तरायेभ्यः प्रतिघातेभ्यस्त्रासेन कारणेन न प्रारभ्यते । 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' **इत्यमरः** । खलूपक्रम्यते ननु कार्यमिति

---

१. 'विघ्ननिहता' इत्यपि पाठः ।

२. 'विघ्नैर्मुहुर्मुरपि' इत्यपि पाठः ।

३. 'प्रारब्धमुत्तमगुणा' इत्यपि पाठः ।

शेष: । सुकार्यं न प्रारभ्यत इत्यर्थ: । मध्यास्तु प्रारभ्य कार्यमुपक्रम्य विघ्नविहता विघ्नै: प्रत्यूहै: कार्यावरोधकै: कारणैर्विहतास्ताडिता: सन्तो विरमन्ति मध्य एव कार्यं त्यक्त्वा विश्राम्यन्ति । परमुत्तमजना विघ्नैर्मुहुर्मुहु: पौन: पुन्येन प्रतिहन्यमाना ताड्यमाना अपि प्रारब्धमुपक्रान्तं कार्यं न परित्यजन्ति मुञ्चन्ति यावत् तन्न पूर्णतया साधयन्ति न तावत्तेषां मनस: सुखं जायत इत्यर्थ: । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥२७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– अधमा: जना: अन्तरायभयहेतुना कार्यारम्भमेव न कुर्वन्ति । मध्यमा जनास्तु कार्यमुपक्रम्य विघ्नै: विह्वलीकृता: सन्तो मध्य एव कार्यं त्यक्त्वा विश्राम्यन्ति । परन्तु पुरुषश्रेष्ठा: विघ्नै: पौन: पुन्येन प्रतिहन्यमाना अपि उपक्रान्तं कर्म न विसृजन्ति ॥२७॥

हिन्दी :– अधम प्रकृति के मनुष्य सत्कार्यों को प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम प्रकृति सम्पन्न पुरुष विघ्नों से प्रताडित होकर प्रारम्भ किये हुए कार्य को मध्य में ही छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तमप्रकृति जन वारम्बार विघ्नों से आहत होने पर भी आरम्भ किये कार्य को सम्पन्न किये विना नहीं छोडते ॥२७॥

English Translation :– Those who give up an attempt to do good when faced with difficulties, are base people. Those who begin but fail to go through on account of obstacles, are mediocre. The great never give up what they have once taken up whatever difficulties might arise. (27)

असन्तो नाऽभ्यर्थ्या:, सुहृदपि न याच्य: कृशधन:,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चै: स्थेयं[1], पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥२८॥

अन्वय : (Prose Order)– प्रिया न्याय्या वृत्ति:, असुभङ्गेऽपि मलिनम् असुकरम्, असन्तो न अभ्यर्थ्या:, कृशधन: सुहृद अपि न याच्या, विपदि उच्चै: स्थेयम्, महतां पदम् अनुविधेयम्, इदम् विषमम् असिधाराव्रतं सतां केन उद्दिष्टम् ॥२८॥

नीतिपथ :– प्रियेति । प्रिया कोमला, न्याय्या न्यायादनपेता न्यायादपतिता न्याययुक्तेत्यर्थ: । वृत्तिर्व्यवहार: । असुभङ्गेऽपि असूनां भङ्गेऽपि प्राणविच्छेदेऽपि मलिनं दूषितं कर्म असुकरं सुखेन क्रियत इति सुकरम् न सुकरमसुकरं दुष्करं प्राणेषु

---

१. 'धैयम्' इत्यपि पाठ: ।

गच्छत्स्वपि सन्तोऽकार्यं न कुर्वन्ति । असन्तोऽसज्जना नाभ्यर्थ्याः किमपि न याचनीयाः । किं तु सन्त एव । कृशधनः कृशं धनं यस्य स कृशधनोऽल्पविभवः सुहृदपि मित्रमपि न याच्यो याचितुं न योग्यः । धनेन स्वसाहाय्यकरणाय । विपदि कृच्छ्रसमय उच्चैरुन्नतं यथास्यात्तथा स्थेयं स्थातव्यमापदि विशिष्य स्वधर्मो रक्षणीयः । महतामाप्तानां श्रेष्ठानां जनानां वा पदं चरणचिह्नमनुविधेयमनुसरणीयम् । अनुकूलं पदं व्यवसितम्, न त्वननुकूलं पदमित्यर्थः । यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन इति नीतिवचनेन महतां मार्ग एव महत्त्वकांक्षिभिर्ग्रहीतव्य इति स्पष्टं प्रतीयते । इदमिति पूर्वाचारसेवनरूपं विषममसाधारणतया कठिननमुच्चावचं दुर्गमिवासिधाराव्रतं खड्गधारेव तीव्राचारव्रतं केन उपदेशकेनोद्दिष्टमुपदिष्टम् । न केनापि उपदिष्टमित्यर्थः । शिखरिणी वृत्तम् ॥२८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– प्रिया नीतिप्रवणा वृत्तिः आश्रयणीया, प्राणविच्छेदेऽपि दुष्करं कार्यमकर्तव्यम्, असन्तः न याचनीयाः, अल्पविभवः सुहृदपि न प्रार्थनीयः, अनर्थसंकटे मानोन्नतिर्न त्याज्या, पूज्यानां मार्गोऽनुसरणीयः–इत्येतत् असाधारणतया दुष्करं व्रतं सज्जनानां निसर्गसिद्धमेव, न केनापि उपदिष्टम् ॥२८॥

हिन्दी :– प्रिय और न्याय पद से न गिरा हुआ व्यवहार, प्राणसंकटकाल में भी दुष्कर्म न करना, दुर्जनों से कुछ भी न मांगना, अल्पविभव मित्र से याचना न करना, विपत्ति काल में उच्चभाव से स्थिर रहना, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करना, –यह तलवार की धार के समान कठोर तीव्र व्रत सज्जनों को किसने बताया है ? ॥२८॥

English Translation :– Gentle appropriate behaviour and not do evil even when threatened with loss of life, not to court help from the wicked, not to ask a friend for money, to remain high in adversity and to follow in the footsteps of the great is a tedious vow that noble persons have taken. We do not know who taught them this ! (28)

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवल[१]ग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२९॥

---

१. 'पिशित' इति पाठान्तरम् ।

अन्वय : (Prose Order)– क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशामापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवल-ग्रासैकबद्धस्पृहो मानमहतामग्रेसर: केसरी किं जीर्णं तृणमत्ति ? ॥२९॥

नीतिपथ :– क्षुत्क्षाम इति । क्षुत्क्षामोऽपि क्षुधा बुभुक्षया क्षामोऽपि दुर्बलोऽपि । 'बुभुक्षा क्षुत्' **इत्यमरः** । जराकृशोऽपि जरया विस्रसया कृशोऽपि जीर्णोऽपि । 'विस्रसा जरा' **इत्यमरः** । शिथिलप्रायोऽपि प्राय: शिथिल इति शिथिलप्राय: । अथवा शिथिल: प्रायो गमनं यस्य स इति । विश्लथाङ्गतया बलहीन: सन्नपीत्यर्थ: । तथाभूतोऽपि वृद्धत्वात्कम्पमानगतिकोऽपि कष्टान्दु:खान्दशामवस्थामापन्नोऽपि प्राप्तोऽपि विपन्नदीधितिरपि विपन्ना नष्टा दीधिति ज्योतिर्यस्यैति । प्राणेषु नश्यत्स्वपि जीवने गच्छत्यपि मरणासन्नोऽपीत्यर्थ: । मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृह: मत्तश्चा-साविभेन्द्रो मदोत्कटो गजराज:, तस्य विभिन्नौ त्रोटितौ कुम्भौ कपोलौ तावेव कवलौ भोजनखण्डौ, तयोर्ग्रासे भक्षण एका केवला बद्धा नियोजिता स्पृहा लालसा ईहा वा येन स: । 'इच्छा कांक्षा स्पृहेहा' **इत्यमरः** । तथा मानमहतामभिमानोन्नतानामग्रेसरोऽग्रगण्य: केसरी सिंह: जीर्णं पुराणं तृणं शुष्कघासमत्ति भक्षयति कदाचित् । नात्त्येवेत्यर्थ: । 'सिंहो मृगेन्द्र: पंचास्यो हर्यक्ष: केसरी हरि:' **इत्यमरः** । प्राकृतजनस्तु नैवमिति भाव: । यदुक्तं-प्राणानपि परित्यज्य मानमेवाभिरक्षयेत् । प्राणस्तरङ्गचपला मानमाचन्द्रतारकम् । इति । अप्रस्तुतप्रशंसालंकार: । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– बुभुक्षया दुर्बल:, जरया जीर्ण:, विश्लथाङ्गतया बलहीन:, मरणासन्नोऽपि मत्तगजविदारितकुम्भस्थलमांसभोजी अभिमानोन्नतानामग्रगण्य: सिंह: किं शुष्कघासमत्ति । नात्त्येवेत्यर्थ: । तथैव मानी जन: कष्टां दशां गतोऽपि स्वमहत्त्वापहारिणीं चेष्टां न करोति ॥२९॥

हिन्दी :– क्षुधा से पीडित, वृद्धावस्था से क्षीण, शक्ति से हीन, विपन्नावस्था में पडा, तेजोहीन तथा प्राण संकटकाल में भी एकमात्र मदमत्त हाथियों के कपोलों को फाडकर खाने वाला आत्मसम्मानियों में अग्रगण्य सिंह, क्या सूखी घास खाता है? अर्थात् कभी नहीं खाता ॥२९॥

English Translation :– Does ever a lion– the first and foremost of those that are great by self respect– eat, a worn out blade of grass, although starving, senile and utterly exhausted, and though surrounded by Calami-

ties and lacking in the lustre of life and even when dying, because his only desire is to feed himself upon the broken temples of huge elephant full of strength and youth, does he ever do it ? (29)

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति, न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं,
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ।।३०।।

अन्वय : (Prose Order)– श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमपि गोः अस्थि लब्ध्वा परितोषम् एति । तत्तस्य क्षुधाशान्तये तु न । सिंहः अङ्कमागतमपि जम्बुकं त्यक्त्वा द्विपम् निहन्ति । कृच्छ्रगतोऽपि सर्वो जनः सत्वानुरूपं फलम् वाञ्छति ।।३०।।

नीतिपथ :– स्वल्पेति । श्वा शुनकः स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं स्नायुश्चास्थिबन्धनार्थं सूत्रं वसा च चिक्कणोऽस्थिना मांससंयोजनार्थः पदार्थविशेषस्तयोरवशेषेणान्यैः पक्ष्यादिभिः शेषिते न किञ्चिद्भागेन मलिनं निर्मांस न विद्यते मासं यस्मिंस्तत् मांसलेशशून्यमपि गोरस्थि कीकसं लब्ध्वा परितोषं संतोषं तृप्तिं वैति प्राप्नोति । 'कीकसं कुल्यमस्थि च' **इत्यमरः** । तत् तु तस्य क्षुधाशान्तये क्षुधाया बुभुक्षाया शान्तये निवृत्तये न भवति । सिंहो हरिरङ्कमागतं सामीप्यं प्राप्तमपि जम्बुकं श्रृगालं तुच्छत्वात् त्यक्त्वा द्विपं द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपस्तं हस्तिनं निहन्ति भक्षयितुं व्यापादयति । तथा हि कृप्छ्रगतोऽपि कृच्छ्रं क्लेशं गतः प्राप्तोऽपि सर्वोऽशेषो जनः सत्त्वानुरूपं बलस्यानुरूपमनुकूलं फलमिष्टवस्तु वाञ्छति कामयते । यो यादृशो भवति तस्मै स्वानुरूपमेव वस्तु रोचत इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।३०।।

सरलसंस्कृतार्थ :– लेशमात्रावशिष्टस्नायुवसामलिनं गोः कीकसं लब्ध्वा शुनकः सन्तुष्यति तत्तु तस्य अशनायाशान्तये न पर्याप्तम् । किन्तु समीपवर्तिनं क्रोष्टारं त्यक्त्वा सिंहः हस्तिनं निहन्ति । परमार्थतः संकटस्थोऽपि अशेषो जनः स्वस्वसामर्थ्यानुसारमेव फलं काङ्क्षति ।।३०।।

हिन्दी :– कुत्ता अल्पमात्रावशिष्ट स्नायु और वसा से मलिन गौ की हड्डी को पाकर संतुष्ट हो जाता है यद्यपि वह उसकी क्षुधा निवृत्ति के लिए पर्याप्त नहीं है । (इसके विपरीत) सिंह समीपवर्ती गीदड को छोड हाथी को मारता है । (वस्तुतः

ठीक ही है क्योंकि) दुरवस्था में पहुँच कर भी समस्त प्राणी अपने बल के अनुरूप ही फल की इच्छा करते हैं ॥३०॥

English Translation :– A dog is satisfied with a small and dirty bone of a cow, with some shreds of sinews hanging on to it, but that does not satisfy his hunger. A lion kills an elephant and lets go a jackal that has fallen into his lap. The moral is that all wish for a suitable share though the circumstances might be adverse. (30)

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं[१],
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते, गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति, चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥३१॥

अन्वय : (Prose Order)– श्वा पिण्डदस्य (पुरत:) लाङ्गूलचालन-मधश्चरणावपातं भूमौ निपत्य च वदनोदरदर्शनं कुरुते, गजपुङ्गवस्तु धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥३१॥

नीतिपथ :– उत्तमाधमयोर्भेदमाह–**लाङ्गूलेति** । श्वा सारमेय: भषको वा पिण्डदस्य पिण्डं ददातीति पिण्डदस्तस्य । 'शुनको भषक: श्वा' **इत्यमर:** । रोटिकादातुरन्नदस्य वा लाङ्गूलचालनं लाङ्गूलस्य पुच्छस्य चालनं कम्पनम्, अधोनीचैश्चरणावपातं चरणयोरङ्घ्रयोरवपातं नम्रत्वं भूमौ धरायां निपत्य पतित्वा च वदनोदरदर्शनं वदनं च मुखं चोदरश्च मध्यश्च तयोर्दर्शनं प्रकाशनं कुरुते । एता: सर्वाश्चेष्टा दास्य प्रकाशनाय करोति । गजपुङ्गवस्तु गजेषु पुङ्गवो गजश्रेष्ठ: पुमान् गौरिति पुङ्गव: वृषभ: । अयं शब्द: श्रेष्ठत्ववाची, यथा कविपुङ्गव: इत्यादौ । तु शब्द: कुक्कुरात् भेदं द्योतयति । धीरं गम्भीरं विलोकयति पश्यति पिण्डदसन्निधावितिभाव: । अथ चाटुशतैरनुनयवाक्यै: भुङ्क्तेऽभ्यवहरति खाद्यान्तरं च लेढि । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥३१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– सारमेय: पिण्डदस्य पुरस्तात् पुच्छविवर्तनं भूतले चरणावपातं भूमौ स्वयमेव पतित्वा वक्त्रकुक्षिप्रदर्शनं च करोति । किन्तु पिण्डदसंनिधावपि

---

१. 'णावघातं' इत्यपि पाठ: ।

गजेन्द्रः गंभीरं पश्यति अनेकानुनयवचनानन्तरं च कथंचिद् खादति इमा
नीचानीचजनयोर्दृष्टान्ताविति भावः ॥३१॥

हिन्दी :– कुत्ता रोटी देनेवाले के सामने पूँछ हिलाता है, भूतलपर पैरों
लोटता है तथा भूमि पर स्वयं गिरकर मुख तथा पेट दिखाता है परन्तु गज
(भोजन देनेवाले के सामने) गंभीरता से देखता है और अनेक अनुनय-विनय व
के पश्चात् खाता है ॥३१॥

English Translation :– A dog wags its tail and fa
at the feet of one who gives it a loaf of bread. It lyi
prostrate on the ground, shows its mouth and belly also
its benefector, on the other hand an elephant looks wi
patience at his driver and takes food only when flatter
in a hundred ways. (31)

परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।।३२।।

अन्वय : (Prose Order)– परिवर्तिनि संसारे को वा मृतो न जायते
स जातो येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति ॥३२॥

नीतिपथ :– जात्युन्नतिः कर्त्तव्येत्याह– **परिवर्तिनीति** । परिवर्तिनि परिव
शीलं यस्य तस्मिन् प्रतिक्षणं विपरिमिण्यमाने संसारे जरामरणरूपसंसारचक्रे क
पुमान्मृतः प्रेतो न जायते न भवति। को वा पुमान् न जायते जन्म प्राप्नो
सर्वोत्पन्नो मृतश्च भवत्येवेत्यर्थः । सः पुमान् जातः उत्पन्नः येन जातेनोत्पन्नेन वं
कुलं समुन्नतिं याति प्राप्नोति । 'संततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ। वंशो' **इत्यमरः**
कुलोद्धारको यः स एव जन्मलाभवान् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥३२॥

सरलसंस्कृतार्थ :– धर्माधर्मवशात्पौनः पुन्येन विवर्तमाने जरामरणरूपसंसार
को वा न मृतः को वा न उत्पद्यते । सर्वोऽप्युत्पन्नो मृतश्च भवत्येवेत्यर्थः । वस्तुत
तस्यैव जन्मग्रहणे साफल्यं येन स्वकुलस्योन्नतिः क्रियते ॥३२॥

हिन्दी :– इस नित्य परिवर्तनशील जरामरणरूपसंसारचक्र में कौन म
नहीं और कौन उत्पन्न नहीं होता है । वास्तव में उत्पन्न वही है जिसके उत्पन्न ह
से वंश की समुन्नति होती है ॥३२॥

English Translation :– Who does not die and is not reborn in this changeable world ? But he is really born by whose birth his family makes a progress. (32)

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, शीर्यते वन एव वा ।।३३।।

अन्वय : (Prose Order)– कुसुमस्तबकस्येव मनस्विनो द्वयी वृत्तिः । सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वन एव वा शीर्यते ।।३३।।

नीतिपथ :– स्वाभिमानवतो महिमानमाचष्टे– **कुसुमेति** । कुसुमस्तबकस्य कुसुमानां पुष्पाणां स्तबको गुच्छकन्तस्येव मनस्विनः स्वाभिमानवतो द्वयी द्विविधा वृत्तिर्व्यापारः । तस्य जगति तृतीयाचरणशैली न काचित् सम्भाव्यते । किं तद्वृत्तिद्वयमित्यत आह-सर्वेषां जनानां मूर्ध्नि शिरसि वा तिष्ठेत् स्थितो भवेत् सर्वानतिक्राम्येत् शिरसि वा शेखररूपेण वा स्यात् अथवा नो चेद् वनेऽरण्ये शीर्यते जीर्यते । उपमालंकारः ।।३३।।

सरलसंस्कृतार्थ :– स्वाभिमानवतः पुरुषस्य पुष्पगुच्छस्येव द्विविधा वृत्तिः भवति, यथा पुष्पगुच्छकः सर्वेषां जनानां शिरसि तिष्ठति अथवा वन एव जीर्यते । एवमेव मानिनोऽपि सर्वेषां जनानां मध्ये उन्नतस्थाने तिष्ठन्ति तदलाभे अरण्ये विजने वा प्राणान् त्यजन्ति ।।३३।।

हिन्दी :– फूल के गुच्छे की भाँति स्वाभिमानी पुरुषों की दो प्रकार की गति होती है, या तो वे मूर्धन्य स्थान पर रहते हैं या वन (एकान्त) में नष्ट हो जाते हैं ।।३३।।

English Translation :– As for a bunch of flowers, so there are only two courses for a self-respecting man, in this world, Either he should stand ahead of all others or should perish in the forest. (33)

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वर[१]निशाप्राणेश्वरौ भासुरौ[२]
भ्रातः ! पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः ।।३४।।

अन्वय : (Prose Order)– बृहस्पतिप्रभृतयः संभाविताः पञ्चषः अन्येऽपि

१. 'दिवाकर' इत्यपि पाठः ।
२. 'भास्वरौ' इत्यपि पाठः ।

सन्ति, विशेषविक्रमरुचीरेष राहुस्तान् प्रति न वैरायते। भ्रातः ! पश्य, शीर्षावशेषीकृतः दानवपतिः पर्वणि भासुरौ दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ द्वावेव ग्रसते ।।३४।।

नीतिपथ : सन्त्यन्य इति। बृहस्पतिप्रभृतयः बृहतां वाचां पतिः स्वामी बृहस्पतिः प्रभृतिरादिर्येषां ते गुर्वादयः। प्रभृतिशब्देन बुधशुक्रादयोऽपि गृह्यन्ते। संभाविताः प्रतिष्ठितः पञ्चषः पञ्च वा षड् वा। अन्येऽपि सूर्याचन्द्रमसौ विहाय तद्व्यतिरिक्ताः केचित् परेऽपि ग्रहाः इति शेषः। सन्ति अम्बरे विद्योतन्ते। विशेषविक्रमरुचि-र्विशेषोऽसाधारणश्चासौ विक्रमः शौर्यन्तस्मिन् रुचिरिच्छा यस्य सः। एष प्रसिद्धो राहुःतान् सैंहिकेयः सूर्यचन्द्रातिरिक्तान् प्रत्युद्दिश्य न वैरायते वैरन्नकरोति। 'राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो' **इत्यमरः।** हे भ्रातः ! सखे पश्य, ज्ञानदृष्ट्या निभालय यच्छीर्षावशेषीकृतः शीर्षं शिरोऽवशेषः शिष्टः कृतो रक्षितो यस्य स भासुरौ प्रभाशीलौ दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ दिनेश्वरः सूर्ये निशाया रात्रेः प्राणानां जीवनस्येश्वरः स्वामी च चन्द्रो द्वाविवोभावेवेमौ ग्रसते हन्ति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।३४।।

सरलसंस्कृतार्थ :– अम्बरे सूर्याचन्द्रमसौ विहाय बृहस्पत्यादयोऽन्येऽपि पञ्च वा षड्वा प्रसिद्धा ग्रहाः विद्योतन्ते। किन्तु तेजिष्ठैः सहैव कलहाचरणतत्परः सः स्वर्भानुः तान् प्रति वैरं न करोति। हे सखे ! ज्ञानदृष्ट्या निभालय यत् शिरोमात्रावशिष्टगात्रः दानवपतिः तेजस्विनौ सूर्याचन्द्रमसावेव गिलति। मानशौर्यशालिनः निजाङ्गवैकल्यं न परिगणयन्ति किन्तु महत्कार्यमेव कर्त्तुं व्यवसन्तीति तात्पर्यम् ।।३४।।

हिन्दी :– आकाश में बृहस्पति आदि ५-६ और भी बड़े-बड़े ग्रह हैं परन्तु असाधारण पराक्रमरुचिसम्पन्न वह राहु उनसे वैर नहीं करता है। हे मित्र ! देखो, शिर मात्र से बचा हुआ यह राक्षसों का राजा राहु चमकते हुए सूर्य और चन्द्र इन दो ग्रहों को ही ग्रसता है ।।३४।।

English Translation– There are in the sky five or six other important illuminaries. But this Rahu, who is fond of an extra ordinary valour, does not cherish an enmity against them. O brother ! you look this lord of demons who is cut a head, and swallows two splendid gods i.e. the sun and the moon. (34)

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफलकस्थितां,
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।

तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह ! महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ।।३५।।

अन्वय : (Prose Order)– शेष: फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणिं वहति। कमठपतिना स मध्येपृष्ठं सदा धार्यते। तमपि पयोधि: अनादरात् क्रोडाधीनं कुरुते। अहह महतां चरित्रविभूतय: नि:सीमान: (भवन्ति) ।।३५।।

नीतिपथ :– महतां महत्त्वमाह–**वहतीति**। शेषो सर्पराज: फणाफलकस्थितां फणैव फलकं काष्ठपत्रं तत्र स्थितां शयितां भुवनश्रेणिं भुवनानां लोकानां श्रेणीं मालां वहति धारयति। 'शेषोऽनंतो वासुकिस्तु सर्पराजो' **इत्यमरः**। कमठपतिना कमठानां कूर्माणां पतिनाधिष्ठात्रा मध्येपृष्ठं पृष्ठस्य मध्ये मध्येपृष्ठम्, सदा सततं धार्यतेऽवस्थाप्यते। 'कूर्मे कमण्कच्छपौ' **इत्यमरः**। तमपि कमठपतिमपि पयोधि: समुद्र: अनादराल्लीलया क्रोडाधीनं क्रोडस्याङ्कस्याधीनं समाश्रितं कुरुते। अहहेत्याश्चर्येऽव्ययम्, महतां महानुभावानां चरित्रविभूतयश्चरित्राणामाचाराणां विभूतय: सम्पत्तयो निस्सीमानो न विद्यन्ते सीमानो यासान्तथा भूता:, अनन्ता इत्यर्थ:। अवाङ्मनसगोचरा इति यावत्। अत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरगुणोत्कर्षावहत्वान्माला-दीपकालङ्कार:। हरिणीवृत्तम् ।।३५।।

सरलसंस्कृतार्थ :– नागराज: पातालादिचतुर्दशविष्टपपङ्क्तिं फणपट्टे धारयति, तं शेषं आदिकूर्मेण स्वपृष्ठे निरन्तरं धार्यते। तं कमठपतिमपि समुद्र: लीलया अंकगतं कुरुते, महदाश्चर्यम् यत् मानशौर्यशालिनां महानुभावानां महात्म्यसम्पद: निर्मर्यादा: ।।३५।।

हिन्दी :– शेषनाग चतुर्दशभुवन पंक्ति को अपने फणरूपी पट्ट पर धारण करते हैं। उन शेषनाग को कूर्मराज सदा अपने पृष्ठ के मध्यभाग में धारण करते हैं और समुद्र उन कूर्मपति को भी सरलता से अपने अङ्क में धारण करते हैं। आश्चर्य है ! महापुरुषों के चरित्रों का ऐश्वर्य अपार है ।।३५।।

English Translation :– Shesha serpent bears the row of the worlds on the slab of his head. The king of tortoises carries him always. The sea supports the same king of tortoises in his lap. Oh the wealths of the characters of the great are in calculable ? (35)

वरं पक्षच्छेदः[१] समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोदगारगुरुभिः ।

१. 'प्राणोच्छेद:' इत्यपि पाठ:।

तुषाराद्रेः सूनोरहह ! पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ।।३६।।

अन्वय : (Prose Order)– उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः समदमघवन्मुक्त-कुलिशप्रहारैः तुषाराद्रेः सुनोः पक्षच्छेदो वरम् । अहह ! पितिरि क्लेशविवशे पयसां पत्युःपयसि चासौ सम्पातो न उचितः ।।३६।।

नीतिपथ :– वरमिति । उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः बहुलश्चासौ दहनो बहुलदहनो विपुलोऽग्निः तस्योद्गारा उद्गमास्तैर्गुरुभिर्दुस्तरैः । समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः समदेन सदर्पेण मघवता देवेन्द्रेण मुक्तस्य प्रयुक्तस्य कुलिशस्य वज्रायुधस्य प्रहारेर्विदारणैः 'वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः' **इत्यमरः** । तुषाराद्रेः सुनोर्हिमवत्पुत्रस्य मैनाकस्य । पक्षच्छेदः पक्षाणामुत्पतनसाधनीभूतानां पक्षतीनां छेदो विनाशो वरं गरीयान् । अहहेति धिक्कृतौ विस्मये वा । पितरि हिमाद्रौ क्लेशविवशे-क्लेशेन वज्रप्रहारजनितदुःखेन विवशे पराधीने सति पयसां जलानां पत्युरधीशस्य समुद्रस्य पयसि जले चासौ प्रसिद्धः सम्पातो न वरमित्यर्थः । पूर्वं पर्वताः पक्षवन्त आसन् यत्र तत्र पक्षीवदुड्डीयमानाश्च बभूवुः । परमिन्द्रेण तेषां पक्षविनाशः स्ववज्रद्वारेण कृतस्तत आरभ्योत्पतनासहिष्णवो यथास्थानं तिष्ठन्तीति पुराणेषु श्रूयते । शिखरिणीवृत्तम् ।।३६।।

सरलसंस्कृतार्थ :– सदर्पेण देवेन्द्रेण प्रयुक्तैः प्रचण्डाग्निमुद्गिरद्भिः वजप्रहारैः मैनाकस्य पक्षच्छेदः वरमासीत् किन्तु पितरि हिमालये वज्रप्रहारजनितदुःखेन विह्वले सति तस्य निजप्राणसंरक्षणार्थं समुद्रे पलायनमुचितं नासीत् ।।३६।।

हिन्दी :– दर्पान्वित इन्द्र के प्रचण्डाग्नि की ज्वालाओं को उगलने वाले वज्र प्रहारों से मैनाक के पक्षों का कट जाना उचित था किन्तु हिमालय के पुत्र मैनाक को यह उचित न था कि पिता के दुःख से विवश हो जाने पर अपनी रक्षा के लिए समुद्र में गिरना ।।३६।।

English Translation :– It would have been better if the wings of Mainaka, the son of the Himalayas, might have been cut off with the beats of the thunderbolts dealt in a mad rage, by Indra. These beats are very serious for the flashes of the immense fire. But it was not like him that he threw himself down in the waters of the Ocean when his father was overwhelmed by the trouble. (36)

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ।।३७।।

अन्वय : (Prose Order)– सवितु: पादै: स्पृष्टोऽचेतनोऽपि इनकान्त: त् प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरुष: परकृतनिकृतिं कथं सहते ॥३७॥

नीतिपथ. :– तेजस्वी न केनापि प्रघर्षणीय इत्याह– **यदिति**। सवितु: र्यस्य पादै: किरणै: स्पृष्टश्चुम्बितोऽचेतनाऽपि निर्जीवोऽपि, पाषाणत्वादितिभाव: । नकान्त: सूर्यकान्तमणि: प्रज्वलति जाज्वल्यमानो भवति । अयं मणि: सूर्याग्नेर्निहित- तत्किरणै: स्पृष्ट: सन् प्रज्वलति वह्निकणांश्च वर्षति । तत्तस्मात्कारणात् । तेजस्वी वाभिमानवान् पुरुष: परकृतनिकृतिं परेणान्येन कृतां विहितां निकृतिं तिरस्कारं कथं कन प्रकारेण सहते क्षाम्यति न कथमपि । यदा जडोऽपि न सहते तिरस्कारं तर्हि तेतनो नर: कथं सहताम् । यो हि सहते स जडादप्यधिकतरो ज्ञेय:, आर्यावृत्तम् ॥३७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– अचेतनोऽपि सूर्यकान्तमणि: सूर्यस्य पादै: ताडित: सन् जाज्वल्यमान: भवति अतो शौर्यसम्पन्न: पुरुष: शत्रुभि: विहितापकारं कथं क्षमते कदापि न सहते ॥३७॥

हिन्दी :– यदि अचेतन सूर्यकान्तमणि भी सूर्य के पद अर्थात् किरणों से ताडित होकर तेज उगलने लगता है तो मानशौर्यसम्पन्न पुरुष दूसरे के द्वारा किये गये तिरस्कार को कैसे सह सकता है ॥३७॥

English Translation :– When being touched with feet of the sun, the suryakanta (fire-glass) jewel burns, then how can a self respecting man bear an insult done by his enemy ? (37)

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो[१] हेतुः ।।३८।।

अन्वय : (Prose Order)– सिंह: शिशुरपि मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु निपतति, इयं सत्त्ववतां प्रकृति: । वयस्तेजसो हेतु: न खलु ॥३८॥

नीतिपथ :– 'गुणा: पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वय:' इत्येवाह– **सिंह इति** । सिंहो मृगेन्द्र: शिशुरपि शावकोऽपि मदमलिनकपोलभित्तिषु मदेन दानेन मलिना श्यामला कपोलावेव गण्डावेव भित्ती येषान्तेषु गजेषु मत्तमातङ्गेषु निपतति

---

१. 'तेजसां' इत्यपि पाठ: ।

नखैस्तानाक्रम्यतीत्यर्थः । 'पृथुकः शावकः शिशुः' **इत्यमरः** । इयमेषा बाल्येऽपि विक्रान्तता सत्त्ववतां बलवतां प्रकृतिः स्वभावः । वयोऽवस्था तेजसो हेतुः कारणं न भवति खलु । 'हेतुर्ना कारणं बीजम्' **इत्यमरः** । आर्यावृत्तम् ॥३८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– सिंहशावकः मत्तमातङ्गेषु कुम्भस्थलविदारणार्थम् आक्रमणं करोति । बलाढ्यानामेष स्वभावः यत् ते शक्तिमन्तमेव धर्षयन्ति न तु निर्बलम् । अवस्था अनभिभवनीयतायाः कारणं नास्ति खलु ॥३८॥

हिन्दी :– सिंह शावक भी मद से मलिन कपोलस्थलवाले हाथियों पर ही आक्रमण करता है । यह बलवानों की प्रकृति ही है । निश्चित ही अवस्था तेज का कारण नहीं होती है ॥३८॥

English Translation :– Even the cub of a lion attacks the elephants whose wall-like temples are dirty with rut. Such is the nature of the self-respecting. Age is not the cause of valour. (38)

जातिर्यातु रसातलं गुणगणतस्तस्याप्यधो गच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्त्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥३९॥

अन्वय : (Prose Order)– जातिः रसातलं यातु, गुणगणः तस्यापि अधो गच्छतात्, शीलं शैलतटात् पततु, अभिजनो वह्निना सन्दह्यताम्, वैरिणि शौर्ये आशु वज्रं निपततु, नः केवलम् अर्थः अस्तु, एकेन येन विना इमे समस्ताः गुणाः तृणलवप्रायाः (सन्ति) ॥३९॥

नीतिपथ :– द्रव्यस्य विचित्रं महिमानं वणर्यति– **जातिरिति** । जातिर्ब्राह्मणत्वादिर्भारतीयत्वादिर्वा रसातलं नामाधोलोकं यातु गच्छतु । गुणगणो गुणानां दयादाक्षिण्यादीनां सत्प्रवृत्तीनां गणो वर्गस्तस्याप्यधो रसातलस्यापि नीचैर्गच्छतात् प्राप्नुयात् । शीलं सद्वृत्तं शैलतटात् शैलस्य पर्वतस्य कूटात् पतत्वधो यातु । 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' **इत्यमरः** । विशीर्णं भवत्वित्यर्थः । अभिजनो वंशः वह्निनाग्निना सन्दह्यतां प्रज्वल्यताम् । 'अभिजनान्वयौ। वंशो' **इत्यमरः** । वैरिणि कार्यविघातकत्वाच्छत्रूभूते शौर्ये विक्रम आशु शीघ्रं वज्रं कुलिशं पततु प्रह्रियताम् तदपि कामन्नश्यत्वित्यर्थः । नोऽस्माकं केवलमर्थो धनमेवास्तु । किन्तन्माहात्म्यं यत्सर्वदुर्लभवस्तुव्यतिरेकेण तदेवैकं प्रार्थ्यते ?

इत्याह-येनैकेन धनेन सर्वकार्यसाधनेन सकललोककृताराधनेन विना पृथक्कृता: इमे पूर्वोक्ता: समस्तास्सर्वे जात्यादयो गुणास्तृणलवप्राया: तृणस्य लवास्तृणलवा: प्रायस्तृणलवा इति तृणलवप्राया: । तृणाग्रभागवन्निस्सारा: । अतो गुणमहत्ताया अप्येतन्मूलकत्वादयमेव सम्पादनीय इति भाव: । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– ब्राह्मणत्वादिजाति: अधोलोकं गच्छतु, धैर्यौदार्य-गाम्भीर्यादिगुणा अपि नश्यन्तु, सद्वृत्तमपि विशीर्णं भवतु, वंश: वह्निना भस्मीक्रियताम्, शत्रुभूते पराक्रमशालित्वे वज्रपातो भवतु, जातिकुलशीलशौर्यादिनाशेऽप्यस्माकं न किंचिदपि प्रयोजनम् । अस्माकं केवलं वित्तमेव संभवतु । येनैकेन धनेन विना इमे सर्वे गुणा तृणाग्रभागवन्निस्सारा: सन्ति ॥३९॥

हिन्दी :– जाति रसातल में चली जाय, गुणों का समूह उससे भी नीचे चला जाय, सदाचार पर्वत से गिर जाय, वंश अग्नि से भस्म हो जाय, वैरी पराक्रम पर वज्रपात हो जाय । (हमे इससे क्या ?) हमारे पास केवल धन हो, (क्योंकि) केवल अकेले उस धन के विना ये समस्तगुण तिनके के समान हैं ॥३९॥

English Translation :– Let the nation go down, the several virtues may go deeper, let character fall down from the peak of a mountain and let country be burnt. Let thunderbolt quickly fall down upon inimical Valour. We want wealth only wealth-without which all the above mentioned qualities are as worthless as a straw. (39)

तानीन्द्रियाणि सकलानि, तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता, वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित: पुरुष: स एव,
त्वन्य: क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।४०।।

अन्वय : (Prose Order)– तानि सकलानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, सा अप्रतिहता बुद्धि:, तदेव वचनम्, अर्थोष्मणा विरहित: स: एव पुरुष: क्षणेन तु अन्यो भवतीत्येतद् विचित्रम् ॥४०॥

नीतिपथ :– तदेवप्रकारान्तरेणाह– **तानीति** । तानि यान्येव धने सत्यासन् तान्येव सकलानि समस्तानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि सन्ति, तेषु परिवर्तनं नास्ति । तद् एव नाम अभिधानमपि अस्ति । 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च'

इत्यमरः । सैवाप्रतिहताकुण्ठिता बुद्धिर्ज्ञानम्, तदेव यत् सम्पत्तावासीद् वचने भाषणम् । सर्वमिदं वस्तुजातं यादृशं सम्पत्तिसमय आसीदभवत्तादृशमेवाधुनापि । पुनः किन्ततो वैषम्यमित्याह–अर्थोष्मणा अर्थस्य धनस्योष्मणाग्निना तेजसा वा विरहितः शून्यः स एव धनाढ्यः पुरुषः क्षणेन निमेषमात्रेणाऽन्योऽपर इव भवति जायते । इत्येतदन्यत्वप्राणरूपं वस्तु तु विचित्रं कुतूहलजनकं भवत्यस्माकम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥४०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– तान्येव समस्तानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि सन्ति, अभिधानमपि तदेवास्ति, सैव अकुण्ठिता बुद्धिरस्ति, वाणी अपि सैवास्ति, सर्वमिदं वस्तुजातं यादृशं सम्पत्तिसमय आसीत्तादृशमेवाधुनापि अस्ति, किन्तु धनस्योष्मणा विरहितः स एव धनाढ्यः पुरुषः निमेषमात्रेण अपर इव भवति । एतद् कुतुहलजनकम् ॥४०॥

हिन्दी :– वे ही सब इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही अकुण्ठित बुद्धि है, वही वचन है परन्तु यह विचित्र है कि धन की गर्मी निकल जाने से वही पुरुष क्षणभर में अन्य सा बन जाता है ॥४०॥

English Translation :– Same are the senses, same the action, the unfailing intellect is same and very same is the word. But it is wonder that one, when robbed of his wealth, becomes quite a differen man from what he used to be. (40)

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः, स श्रुतवान्गुणज्ञः ।
स एव वक्ता, स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ।।४१।।

अन्वय : (Prose Order)– यस्य वित्तमस्ति स नरः कुलीनः, स पण्डितः, स श्रुतवान् गुणज्ञः स एव वक्ता, स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चन-माश्रयन्ति ॥४१॥

नीतिपथ :– वित्तस्यैवाशेषगुणावहत्वं तावदाह– **यस्येति** । यस्य जनस्य सविधे वित्तमस्ति धनमस्ति विद्यते स नरो जनः कुलीनः कुले जातः कुलीनो महाकुलप्रसूतः । 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः' **इत्यमरः** । स एव पण्डितो विद्वान्, स एव श्रुतवान् बहुश्रुतः । येन विदुषां समीपे स्थित्वा तेषां शिक्षावचांसि

श्रुतानि स श्रुतवान्, बहुश्रुतो वा कथ्यते। सः नरः गुणज्ञो गुणान् काव्यसंगीतादीन् दयादाक्षिण्यादीन् वा जानाति वेत्ति। गुणग्राही इत्यर्थः। स एव वक्ता व्याख्याता, स एव दर्शनीयो रमणीयाकृतिः। यतःसर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति कनकं द्रव्यं वावलम्बन्ते। धने सति जनेऽसन्तोऽपि गुणा लोकेन कल्प्यन्तेऽसति तु सन्तोऽप्यह्नुयन्ते। तस्माद् धनान्यर्जयध्वम्। अतिशयोक्तिरलंकारः। उपजातिवृत्तम् ॥४१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यस्य जनस्य सविधे धनमस्ति स एव नरः महाकुलप्रसूतः, विद्वान्, गुणानुरागी, व्याख्याता, रमणीयाकृतिः चास्ति। यतो हि सर्वे गुणाः वित्तमाश्रयन्ति ॥४१॥

हिन्दी :– जिस व्यक्ति के पास धन है, वह नर कुलीन है, वह पण्डित, बहुश्रुत और गुणों को जानने वाला है। वह व्याख्याता और सुन्दर है, क्योंकि समस्त गुण स्वर्ण अर्थात् धन का ही आश्रय ग्रहण करते हैं ॥४१॥

English Translation :– He, who has got wealth is considered as one born in a respectable family. He is learned and well-advised. He is an orator and beautiful too. All the virtues appertain to gold. (41)

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति, यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः, स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्री चाऽप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

अन्वय : (Prose Order)– नृपतिः दौर्मन्त्र्यात्, यतिः सङ्गात्, सुतः लालनात्, विप्रः अनध्ययनात्, कुलं कुतनयात्, शीलं खलोपासनात्, ह्रीः मद्यात्, कृषिः अपि अनवेक्षणात्, स्नेहः प्रवासात् मैत्री च अप्रणयात्, समृद्धिः अनयात्, धनं त्यागात्, प्रमादात् विनश्यति ॥४२॥

नीतिपथ :– अर्थस्य विनाशप्रकारमाह– **दौर्मन्त्र्यादिति**। नृपतिः राजा। दौर्मन्त्र्यात् दुष्टो मंत्री दुर्मन्त्री। तस्य भावो दौर्मन्त्र्यं तस्मात् दुष्टे साचिव्यसमर्पणान्नृपतिभूपालो विनश्यति अभावंगच्छति। अथवा दुष्टो न सुलक्षणप्रयुक्तो मन्त्रः षाड्गुण्यचिंतनं यस्य तस्य दुर्मन्त्रस्य भावो दौमन्त्र्यं तस्माद्धेतोः नश्यति विनष्टो भवति। यतिर्योगी सङ्गादासक्तेर्विषयेषु विनश्यतीति क्रियापदं सर्वत्राध्याहार्यम्। सङ्गस्य कामक्रोधादिहेतुत्वात्तदुत्पत्तौ भ्रष्टयोगो भवतीत्यर्थः। यदुक्तं 'लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।

तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्नतु लालयेत् । इति । विप्रो ब्राह्मणोऽनध्ययनादनुश्रव-शास्त्राध्ययनाभावान्नश्यति । कुलं वंशः कुतनयात् दुष्टपुत्रान्नश्यति । शीलं वृत्तं खलोपासनात् खलानान्दुष्टानामुपासनात् सामीप्यात् । सत्सङ्गजा दोषगुणाः भवन्तीति न्यायात् । ह्रीर्जुगुप्सितकर्माचरणान्निवृत्तिर्मद्यान्मद्यपानान्नश्यति । यदुक्तं– 'अयुक्तं बहुभाषन्ते यत्र कुत्रापिशेरते । नग्ना विक्षिप्यगात्राणि ते जाल्मा इव मद्यपाः' । इति । कृषिः सस्यमनवेक्षणात् स्वयमदृष्ट्वान्येषु तत्परिरक्षणादिभारसमर्पणान्नश्यति । स्नेहः पुत्रदारादिषूत्पन्नमोहः प्रेम वा प्रवासाश्रयाद्देशान्तरसंचारसमाश्रयणान्नश्यति । 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहो' **इत्यमरः** । मैत्री सख्यं चाप्रणयात् प्रेम्णोऽपरिपालनान्नश्यति । समृद्धिः सम्पत्तिरनयादनीतेर्नीतिं विहाय प्रचलनान्नश्यति । धनं तु त्यागादसावधानतया यत्र कुत्रचिद् द्रव्यस्य निक्षेपात् प्रमादाद् वा धनं नश्यतीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥४२॥

सरलसंस्कृतार्थ :– राजा दुष्टान्मंत्रात् दौर्मन्त्र्यात् वा नश्यति, मुनिः विषयेषु आसक्तेर्विनश्यति, ब्राह्मणः वेदशास्त्राध्ययनाभावान्नश्यति, वंशः दुष्टपुत्रान्नश्यति, सत्स्वभावः दुर्जनसमागमान्नश्यति, लज्जा मद्यपानान्नश्यति, सस्यमनवेक्षणान्नश्यति, स्नेहः प्रवासाश्रयणान्नश्यति, सख्यं प्रेमाभावान्नश्यति, नीतिं विहाय प्रचलनात् समृद्धिः नश्यति, एवञ्च धनमर्थिसात्करणात् प्रमादात् वा नश्यति ॥४२॥

हिन्दी :– नृपति दुष्टमन्त्र से अथवा दुष्टमंत्री से, यति विषयासक्ति से, पुत्र लाड़ से, वेदादि के न पढने से ब्राह्मण, कुपुत्र से वंश, कुसंगति से सदाचार, देख-भाल के अभाव में खेती, परदेशगमन से प्रीति, अप्रणय से मैत्री नीति के अभाव में ऐश्वर्य तथा व्यर्थत्याग और प्रमाद से धन नष्ट हो जाता है ॥४२॥

English Translation :– A king is ruined by a wicked ministery an ascetic by an attachment to enjoyment, a son by over much love, a Brahman by not reading the vedas, a family by a bad son, character by association with the wicked, modesty by drinking, farming by neglect, to love by absence and friendship by ceasing affections, properity by adopting untoward tactics and wealth is rained by carelessness and by disposing it improperly. (42)

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।४३।।

अन्वय : (Prose Order)– वित्तस्य दानं, भोग:, नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति । यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।४३।।

नीतिपथ :– धनस्य विनियोगानाह– **दानमिति** । वितस्य धनस्य दानं पात्रे विनियोगो, भोग: स्रकचन्दनादिद्वारानुभव:, नाश: स्वसमीपान्निर्गमनञ्च इति तिस्र एव गतयो गमनोपाया भवन्ति । तत्र य: जनो न ददात्यर्थिभ्यो न वितरित । वित्तमिति शेष: । अथवा न भुङ्क्ते धनेन सांसारिकाणि सुखानि नानुभवति । तस्य जनस्य धनस्य तृतीया गति: फलं भवति । नाशावस्था भवति । सा त्वत्यन्तकष्टेत्यर्थ: । आर्यावृत्तम् ।।४३।।

सरलसंस्कृतार्थ :– धनस्य पात्रे विनियोग अनुभव: क्षयश्चेति तिस्र एव गमनोपाया भवन्ति । यो जन: पात्राय न प्रयच्छति, नानुभवति तस्य वितस्य नाशरूपा तृतीया गतिर्भवति ।।४३।।

हिन्दी :– धन की दान, भोग और नाश ये तीन गतियाँ होती है । जो पुरुष न सत्पात्र को देता है और न भोग ही करता है उसके धन की तृतीय गति अर्थात् नाश ही होता है ।।४३।।

English Translation :– Of money, there are only three possible ends, charity, enjoyment and wasting. The third end is sure to meet wealth of one who neither gives nor enjoys it. (43)

मणि: शाणोल्लीढ:, समरविजयी हेतिनिहत:[१],
मदक्षीणो नाग:, शरदि सरित: श्यानपुलिना: ।
कलाशेषश्चन्द्र:, सुरतमृदिता बालवनिता,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपा: ।।४४।।

अन्वय : (Prose Order)– शाणोल्लीढ: मणि:, समरविजयी हेतिनिहत:, मदक्षीणो नाग:, शरदि श्यानपुलिना: सरित:, कलाशेषश्चन्द्र:, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा: नृपा: च तनिम्ना शोभन्ते ।।४४।।

---

१. 'दलितो' इत्यपि पाठ: ।

नीतिपथ :– हानिरपि क्वचिच्छ्रेयस्करीत्याह– **मणिरित**। शाणोल्लीढः शाणेन शस्त्रधारायास्तीक्ष्णत्वसम्पादकेन लौहेन पाषाणमयेन वा यन्त्रविशेषेणोल्लीढः संघृष्टो मणिः रत्नम् । हेतिनिहतो हेतिभिः शस्त्रैः निहतः कृतव्रणः समरविजयी समरस्य युद्धस्य विजयी जयनशीलः रणशूरश्च कश्चित् सैनिक इत्यर्थः । मदक्षीणो मदेन दानजलक्षरणेन क्षीणो दुर्बलो नागश्च । 'ग्रहाभ्राहिगजा नागाः' इति **वैजयन्ती** । शरदि शरत्काले श्यानपुलिनाः श्यानानि कृशानि पुलिनानि तटानि यासान्ताः सरितो नद्यः । कलाशेषः कला षोडशो भागः शेषोऽवशिष्टो यस्य तथाभूतस्तन-मात्रावशिष्टः चन्द्रो विधुः । 'कला तु षोडशो भागः' **इत्यमरः** । सुरतमृदिता सुरते संभोगवेलायां मृदिता विह्वलिकृता बालललना बाला चासौ ललना नवयुवतिरिति । अर्थिषु याचकेषु गलितविभवा गलिता विभवा येषान्ते । निःशेषमर्थिसात्कृतधना इत्यर्थः । नृपा राजानः । एते पदार्था येऽत्रोक्ताः श्लोके ते तनिम्नाल्पत्वेन शोभन्ते राजन्ते । दीपकालंकारः । शिखरिणी वृत्तम् ।।४४।।

सरलसंस्कृतार्थ :– शाणसंघृष्टः मणिः, शस्त्रक्षतः समरविजयी, मदक्षीणः हस्ती, शरदर्तौ शुष्कपुलिनाः नद्यः, तन्मात्रावशिष्टः चन्द्रः, रतिरणे विह्वलीकृता बालवनिता, तथा च याचकेभ्यः प्रदानेन व्यपगतार्थसम्पदः जनाः तनुत्वेनैव शोभासम्पन्नाः भवन्ति ।।४४।।

हिन्दी :– शाण (सान) पर घर्षित मणि, हथियारों से आहत योद्धा, मद से हीन हाथी, शरद् ऋतु में सूखे तटों वाली नदियाँ, कलामात्रावशिष्ट चन्द्रमा, काम-क्रीडा में उपमर्दित बाला, और याचकों को धन दे देने के कारण सम्पत्तिरहित राजा- ये सब पदार्थ अपने ह्रास से ही शोभा प्राप्त करते हैं ।।४४।।

English Translation :– The following are pretty on account of their wear an tear :– (1) A diamond that has been rubbed on a whet-stone. (2) A warrior wounded with weapons. (3) An elephant weakened by his rut having gone out. (4) The rivers which have left their banks in the winter. (5) The last digit of the moon. (6) A young woman pressed hard against the breast during the time of sexual intercourse. The kings whose wealth has exhausted by being given to the needy. (44)

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात्सम्पूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानैकान्त्याद्[१] गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च, सङ्कोचयति च।।४५।।

अन्वय : (Prose Order)– परिक्षीणः कश्चिद्यवानां प्रसृतये स्पृहयति, पश्चात् सम्पूर्णः स धरित्रीं तृणसमां कलयति। अतश्चार्थेषु गुरुलघुतयानैकान्त्याद् धनिनामवस्था वस्तूनि प्रथयति संकोचयति च।।४५।।

नीतिपथ :– तृष्णातृष्ण एव गुरुलध्व्यौ न द्रव्येषु काचित् पारमार्थिकी गुरुता लघुता वा दृश्यते इत्याह– **परिक्षीण इति**। परिक्षीणः दैवाद्दरिद्रः सन् कश्चिद्यवानां प्रसृतयेऽञ्जलये स्पृहयालुर्जनः पश्चादनन्तरं सम्पूर्णो दैववशाद्धनसम्पन्नः धनाढ्यः सन् धरित्रीं पृथ्वीं तृणसमां कलयति मन्यते। धनमदेन तथालोकयीत्यर्थः। अतश्चानेन हेतुनार्थेषु गुरुलघुतया गुरुश्च लघुश्चेति। तयोर्भावः तया। महत्त्वेनाल्पत्वेन वानैकान्त्यात्। अनावश्यकत्वात् अर्थाः स्वतो गुरवो लघवो वा न सन्ति। किन्तर्हि तद्गुरुताया लघुताया वा मूलमित्याह-धनिनान्धनवतामवस्था स्थितिर्वस्तूनि धनानि तैः क्रयणार्हानि चार्थान्तराणि सुखसाधनीभूतानि प्रथयति च विस्तृणाति च सङ्कोचयति च निमीलयति चाल्पीकरोति वा। यस्य यादृशी परिस्थितिः स तावदेव धनमर्जितुं चेष्टते लब्धे च तावति परिस्थितौ परिवृतायां ततोऽधिकतराय स्पृहयति। तेन स्थित्यनुकूलमेव जगति सर्वेषां धनालाभायोद्यमो दृश्यत इत्यर्थः। शिखरिणीवृत्तम्।।४५।।

सरलसंस्कृतार्थ :– कश्चिद् पुमान् दैवाद्दरिद्रः सन् प्रसृतिमात्रयवान्गुरुतया-काङ्क्षते। किन्तु स एव प्रसृतये स्पृहयालुः जनः दैववशाद् धनसम्पन्नः सन् सकलां पृथिवीमेव तृणसमां मन्यते। अतोऽनावश्यकत्वात् अर्थाः स्वतो गुरवो लघवो वा न सन्ति। अपितु धनवतामवस्था एव वस्तूनि गुरूकरोति अल्पीकरोति च।।४५।।

हिन्दी :– कोई निर्धन व्यक्ति एक अंजलि मात्र जौ की इच्छा करता है। और (तत्पश्चात्) वही दरिद्र धनपूर्ण होंकर सम्पूर्ण संसार को ही तृण समान समझता है। इस हेतु धनमात्र में छोटापन अथवा कोई बडप्पन नहीं है। धनियों की अवस्था ही वस्तुओं को बडा और छोटा बनाती है।।४५।।

English Translation :– When poor, one longs for a handful of barely:– The same man in opulence counts

---

१. 'नेकान्ता' इत्यपि पाठः।

the earth as of no value. Therefore being high or low does not depend on wealth alone. The circumustances of the rich extend or limit things. (45)

राजन्! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे[१],
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।।४६।।

अन्वय : (Prose Order)– राजन्! यद्येनां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि तेन अद्य वत्समिवामुं लोकं पुषाण। तस्मिंश्चानिशं सम्यक् परिपोष्यमाणे भूमिः कल्पलतेव नाना फलैः फलति ।।४६।।

नीतिपथ :– राजनीतिं वर्णयन् राज्ञा प्रजायाः पालनं यत्नतः कर्तव्यमित्याह– **राजन्निति–** हे राजन्! यदि त्वमेनां प्रत्यक्षां क्षितिधेनुं क्षितिः पृथ्वी धेनुरिव गौरिव तां दोग्धुं तस्याः कररूपं दुग्धं ग्रहीतुमिच्छसीति दुधुक्षसि चेत्, तेन तदद्य सम्प्रत्येव वत्समिव वत्सवदमुं स्वायत्तीकृतं लोकं पुषाण पुष्टं कुरु सर्वथा। तस्मिंश्च प्रजाजने अनिशं निरन्तरं सम्यक् प्रयत्नेन परिपोष्यमाणे पाल्यमाने सति भूमिः क्षितिः कल्पलतेव कल्पवृक्षस्य शाखेव अथवा कल्पवल्लीव नानाफलैरश्वगजगोमहिष्यादिभिः फलति वर्धते। वत्से मृते जीवितायामपि गवि यथा दुग्धासंभवस्तथैव प्रजायां प्रतिकूलायां राष्ट्रमफलमिति तात्पर्यम्। वसन्ततिलका वृत्तम् ।।४६।।

सरलसंस्कृतार्थ :– हे राजन्! यदि त्वमेनां वसुन्धरां गामिव दोग्धुमिच्छसि तर्हि स्वप्रजाजनम् सर्वथा परिपालय। प्रजाजने निरन्तरं सम्यक् प्रयत्नेन पाल्यमाने सति वसुन्धरा कल्पलतेव धनधान्यादिबहुरूपफलं निष्पादयति ।।४६।।

हिन्दी :– हे राजन्! यदि तुम इस पृथ्वी का गौ की भांति दोहन करना चाहते हो तो बछड़े की भाँति इस प्रजावर्ग का सर्वथा परिपालन करो। प्रजाजन का निरन्तर भली प्रकार पालन करने से पृथ्वी कल्पवृक्ष के समान अनेक प्रकार के फलों को देती है ।।४६।।

English Translation :– O king if thou wishest to milk this cow of the earth, then protect your subjects as you would a calf. When that is constantly protected well

---

१. 'परिपुष्टयमाणे' इति पाठान्तरम्।

then only the earth bears many good fruits like the creeper-divine (46)

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चाऽर्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
वेशाङ्गनेव[१] नृपनीतिरनैकरूपा ।।४७।।

अन्वय : (Prose Order)– वेशाङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा । सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनीच हिंस्रा दयालुरपि । अर्थपरा वदान्या च । नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च ।।४७।।

नीतिपथ :– राजनीतेर्बहुरूपत्वं वर्णयन्नाह– **सत्येति** । वेशाङ्गनेव वेशस्यापणस्याङ्गना स्त्री वेश्या पण्यस्त्री वा तद्वद् । 'तच्छाखानगरं वेशो वेश्याजनसमाश्रयः । आपणस्तु' **इत्यमरः** । नृपनीतिर्नृपाणां राज्ञां नीतिर्व्यवहारप्रकारोऽनेकरूपानेकानि विभिन्नानि यथासमयव्यवस्थितानि रूपाणि गतयो यस्याः सा । कानि तानि बहूनि रूपाणीत्याह । सत्या यथार्थभाषिणी, अनृता मिथ्याभूता च । वाराङ्गनापि स्वार्थवशात् कदाचित् सत्यं कदाचिदसत्यं वदति । परुषा कदाचिन्निष्ठुरा प्रियवादिनी मधुरालापिनी च । हिंस्रा क्वचिद् यत्रार्थप्राप्तिर्न संभवति तत्र वेश्या घातिका प्रियतमस्य वा शत्रोर्घातिका तथैव राजनीतिरपि क्वचिद्युद्धादौ घातिकैव । दयालुरपि कारुणिका च, द्वेऽपि यथासमयं दयाभावं प्रकटयेते । अर्थपराऽर्थ एव परं परमं चरमञ्च लक्ष्यं यस्याः सा । धनसंग्रहमात्रावतारा । वदान्या क्वचिद्दानवीरा । वदान्यो दानशौण्डे स्यात् । दानवीर इत्यर्थः । क्वचिद्राजा कार्पण्यं क्वचिल्लोलुपत्वञ्च दर्शयति वेश्यावत् । नित्यव्यया नित्यो निरन्तरो व्ययो यस्याः सा तथोक्ता । प्रचुरनित्यधनागमा च प्रचुरः पुष्कलो नित्यश्च सार्वकालिकश्च धनस्यार्थस्यागम आयो यस्य स इति । वसन्ततिलका वृत्तम् ।।४७।।

सरलसंस्कृतार्थ :– राजवृत्तिः वाराङ्गनेव यथार्थभाषिणी, असत्यवादिनी च, कठोरभाषिणी मधुरालापिनी च, घातुका कारुणिका च, धनलुब्धा दानशौण्डा च, नित्यदानशीला प्रचुरधनागमा च– इत्थंरूपेण बहुप्रकारा भवन्ति ।।४७।।

हिन्दी :– वेश्या की भाँति राजनीति भी अनेक रूपोंवाली होती है । कभी

१. 'वाराङ्गनेव' इत्यपि पाठः ।

सत्य और कभी झूठ, कभि निष्ठुर और कभी प्रियवादिनी, कभी हिंसक और कभी दयालु, कभी कृपण तथा कभी उदार, नित्यव्यय करानेवाली तथा प्रचुर नित्य धनागमवाली होने से वेश्या की भांति राजनीति भी अनेक रूपों वाली होती है ॥४७॥

English Translation :– Like a dancing girl politics too, takes many forms. In both of them there are truth as well as falsehood, sweetness and harshness of speech, cruelty as well as mercy, a greed and also generosity, a constant expenditure together with a plentiful and incessant income. (47)

विद्या[१] कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।।४८।।

अन्वय : (Prose Order)– विद्या, कीर्तिः ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः, मित्रसंरक्षणं च एते षड्गुणाः येषां न प्रवृत्ताः तेषां पार्थिवोपाश्रयेण कः अर्थः ? ॥४८॥

नीतिपथ :– विद्येति । विद्या ज्ञानं कीर्तिर्यशो ब्राह्मणानां विदुषां विप्राणां वा पालनं संरक्षणं दानं पात्रेषु धनप्रक्षेपः भोगः स्रक्चन्दनादिजनितसुखानुभवः मित्रसंरक्षणं च सुहृज्जनपालनं चेति षड्गुणा लाभाः येषां न प्रवृत्ता यैर्नाधिगतास्तेषां जनानां पार्थिवोपाश्रयेण पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः । 'राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः' **इत्यमरः ।** तस्योपाश्रयेणावलम्बनेन कोऽर्थः किम्प्रयोजनं फलं वा । अथवा एते षड्गुणा येषां राज्ञां न प्रवृत्ता तेषामुपाश्रयेण कोऽर्थः, न कोऽपीत्यर्थः । शालिनीवृत्तम् ॥४८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– विद्या, यशः, ब्राह्मणसन्तर्पणं, सम्प्रदानं, सुखानुभवः, सुहृत्समुद्धरणम् एते षड्गुणाः येषां न प्रवर्तन्ते तेषां जनानां पार्थिवोपाश्रयेण को लाभः ? अथवा एते षड्गुणा येषां राज्ञां न प्रवृत्ता तेषां समाश्रयेण को लाभः ? ॥४८॥

हिन्दी :– विद्या, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान-भोग, और मित्र संरक्षण ये छः गुण जिन्होने प्राप्त नहीं किये उन मनुष्यों को राज्याश्रय से क्या लाभ?

---

१. 'आज्ञा' इत्यपि पाठः ।

अथवा, उपर्युक्त छः गुण जिन राजाओं में नहीं है, उनके आश्रय से क्या लाभ ? ।।४८।।

English Translation :– What is the use of being patronised by a king, if one cannot attain the following six virtues– (1) Knowledge (2) Fame (3) Protection of Brahmans (4) Charity (5) Enjoyment (6) And a preservation of one's friends. (48)

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः,
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृहणाति तुल्यं जलम् ।।४९।।

अन्वय : (Prose Order)– धात्रा यत् स्तोकं महद् वा धनं निजभालपट्टलिखितं तन्मरूस्थलेऽपि प्राप्नोति । मेरौ ततोऽधिकन्न । तद् धीरो भव, वित्तवत्सु वृथा कृपणां वृत्तिं मा कृथाः, पश्य पयोनिधावपि कूपे घटस्तुल्यं जलं गृहणाति ।।४९।।

नीतिपथ :– धनादिदैवायत्तमित्याह–**यद्धात्रेति** । धात्रा ब्रह्मणा यद् यावत् महद्वा धनं बह्वल्पं वा वित्तम् भालपट्टलिखितं भाल एव मस्तक एव पट्टो लेखनार्थः शिलाखण्डस्तस्मिंल्लिखितमङ्कितं तत् तावदेव धनं मरुस्थले सहाराख्ये धन्वदेशेऽपि, 'समानौ मरुधन्वानौ' **इत्यमरः** । प्राप्नोति लभते । अन्यूनमिति शेषः । मेरौ रत्नगिरौ ततो धातृलिखितादधिकन्न हि । ततस्मात्कारणाद्धीरः स्थिरचित्तो भव । वित्तवत्सु धनवत्सु वृथा निरर्थकमेव कृपणां वृत्तिं दीनचेष्टा मा कृथा मा प्रदर्शय । 'व्यर्थके तु वृथा मुधा' **इत्यमरः** । पश्य विचारदृष्ट्या निरीक्षस्व यत् पयोनिधावपि जलस्याक्षय्यकोशभूतेऽपि कूपे घटः कलशस्तुल्यं स्वपरिमाणानुरूपमेव जलं गृहणाति नाधिकन्न्यूनं वा । शार्दूलविक्रीडितम् ।।४९।।

सरलसंस्कृतार्थ :– मनुष्यस्य भाग्यपट्टे यदल्पं बहुलं वा धनं लिखतं स्यात् तद्धनं जनः ऊषरदेशेऽपि पूर्णरूपेण प्राप्नोति, ब्रह्मलिखितादधिकं कनकाचलेऽपि न प्राप्नोति । तस्मात् हे मनुष्य ! स्थिरचित्तो भव । धनाढयेषु दीनां वृत्तिं मा कार्षीः । विचार दृष्ट्या निरीक्षस्व, घटः अल्पंजलाधारे कूपे समुद्रे वा आत्मपरिमितं तुल्यं जलं स्वीकुरुते । न तु कूपेऽल्पम्, तथा च पयोनिधावधिकमित्यर्थः ।।४९।।

हिन्दी :– विधाता ने जो न्यून अथवा अधिक धन भालपट्ट पर निर्दिष्ट कर दिया है उसे मनुष्य रेगिस्तान में भी प्राप्त कर लेता है और उससे अधिक कनकाचल पर भी नहीं पा सकता। अत: मनुष्य ! धीर बनो। धनिकों के प्रति दीन चेष्टायें न करो। देखो ! घड़े को कुँए में डालो या समुद्र में वह उतना ही पानी लेता है जितना उसका आकार है ॥४९॥

English Translation :– No man gets more or less than which is written in his lot. That much he gets even in a desert and no more even at 'Sumera' the mountain of gods. Therefore be patient and donot go begging to the rich. See that a pitcher draws water according its capacity from the well which is a treasure of water. (49)

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवराऽस्माकं कार्पण्योक्तिं प्रतीक्षसे ? ॥५०॥

अन्वय : (Prose Order)– हे अम्भोदवर ! त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां गोचरो न ? अस्माकं कार्पण्योक्तिः किं प्रतीक्षते ॥५०॥

नीतिपथ :– त्वमिति। हे अम्भोदवर ! अम्भो ददतीत्यम्भोदास्तेषु वरः। सम्बुद्धौ। हे अम्भोदवर मेघश्रेष्ठ ! त्वमेव नान्यश्चातकाधारोऽसि चातकानां तोतकानां पक्षिविशेषाणामाधार आश्रयोऽसीति। 'सारङ्गस्तोतकश्चातकःसमाः' **इत्यमरः**। चातको हि कश्चिद् ह्रस्वश्चटकाकारः खगः। तस्य च गले भवति किमपि क्षुद्रं छिद्रम्। स तु सर्वं वर्षं पिपासुरेव तिष्ठति स्वात्यान्तु मेघेन विसृष्ट उदबिन्दुस्तस्य कण्ठस्थच्छिद्रेणोदरान्तः प्रविशति तेन च तस्य तृड् विरमति। इति तव चातकाधारीभवनं केषां जनानां गोचरो ज्ञानविषयो न। सर्वैरपीदं ज्ञायत एव। अतोऽस्माकं चातकानां कार्पण्योक्तिं दीनतामयीं वाणीं। दीनतासूचकमस्मद् वचनं किं कस्मै प्रयोजनाय प्रतीक्षसे प्रतिक्षा करोषि। वचनं विनैव स्वज्ञानेनैव जलदानेनाधिकन्तवौदार्यं स्यादिति हृद्यम्। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥५०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– हे मेघश्रेष्ठ ! त्वमेवास्माकं चातकनामाधारोऽसि इति सर्वैरपीदं ज्ञायत एव। अतो दीनतासूचकमस्मद् वचनं कुतः अपेक्षसे। वचनं विनैव स्वज्ञानेनैवास्माकमाशा पूरणीया ॥५०॥

हिन्दी :– हे मेघश्रेष्ठ ! तुम ही चातकों के जीवनाधार हो, यह तथ्य किसे विदित नहीं है। अत: हमारी दीनवाणी की अपेक्षा क्यों करते हो ॥५०॥

English Translation :– O best of the clouds ! who are unaware of the fact that you and you only are a support for the chatakas. Then why do you wait for a word of supplication from me ? (50)

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ।।५१।।

अन्वय : (Prose Order)– रे रे मित्र चातक ! सावधानमनसा क्षणं श्रूयताम् । गगने बहवोऽम्भोदाः वसन्ति सर्वेऽपि एतादृशाः न । केचिद् वृष्टिभिर्वसुधामार्द्रयन्ति केचिद् वृथा गर्जन्ति । यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो दीनं वचः मा ब्रूहि ।।५१।।

नीतिपथ :– रे रे इति । रे रे इति नीचसम्बोधनम् । मित्र सुहद् चातक सावधानमनसावधानेन सह विद्यमानं सावधानम् । सावधानं सध्यानञ्चतन्मनस्तेन । क्षणं किञ्चत्कालं श्रूयतामाकर्ण्यतामस्मद्वचः इति शेषः । यतः श्रुते हि तस्मिन् भवताऽतिशयं हितं स्यान्नान्यथा । तद्धितवचनमाह । गगन आकाशे बहवोऽनेकेऽम्भोदा मेघा वसन्ति भ्रमन्ति सर्वे समस्ता अप्यविशेषेण एतादृशा यादृशास्त्वया मन्यन्ते तादृशा दातार इत्यर्थः, न सन्तीति क्रियाशेषः । तान् प्रकारैर्निरूपयति । केचिद् विशिष्टास्त्वम्भोदा वृष्टिभिर्वर्षाभिर्वसुधां पृथ्वीमार्द्रयन्ति धाराभिः सिञ्चन्ति । केचिदन्ये तु वृथा निरर्थकमेव गर्जन्ति वृथा स्तनितं कुर्वन्ति प्रयच्छन्ति तु न किमपि । 'स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषे रसितादि च' **इत्यमरः ।** ततस्त्वया किंकार्यमित्याह– यं यं मेघं पश्यसि तस्य पुरतो दीनं कृपणं वचो वचनं 'दीयतां में जलमतितृषितोऽस्मीत्याकारकं मा ब्रूहि मा वद । यो हि वदान्यः स्यात् स स्वयमेव दद्यात् किम्मुधा दैन्य प्रद्योतनेनेत्यर्थः ।।५१।।

सरलसंस्कृतार्थ :– हे मित्र चातक ! अवधानेन सह किञ्चित्कालम् अस्मद्वचः आकर्ण्यताम्, नभोमण्डले बहवो अम्भोदाः सन्ति, परं ते सर्वे दयालवः न सन्ति, केचिदम्भोदा वर्षाभिः पृथ्वीं सिञ्चन्ति अन्ये तु निरर्थकमेव वृथा स्तनितं कुर्वन्ति, प्रयच्छन्ति तु न किमपि । अतो यं यं मेघं पश्यसि तस्य तस्य पुरतः कृपणं वचः मा वद ।।५१।।

हिन्दी :– हे मित्र चातक ! सावधान चित्त से क्षण भर मेरी बाते सुनो। आकाश में अनेक बादल रहते हैं। पर वे सभी ऐसे उदार नहीं हैं (जो तुझे जल दे दें) कुछ मेघ तो जलधाराओं से पृथ्वी को सिंचित कर देते हैं और कुछ मेघ वृथा गर्जन करते हैं। इसलिये तुम जिस किसी मेघ को देखकर ही उनके सामने अपनी दीन प्रार्थना न करो ।।५१।।

English Translation :– O friend Chataka ! listen to me attentively for a moment. Though there are many clouds in the sky but all are not similar. Some besprinkle the earth with rains while others thunder in vain. Do not pray to every one whom you chance to come across. (51)

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।।५२।।

अन्वय : (Prose Order)– अकरुणत्वम्, अकारणविग्रहः, परधने परयोषिति च स्पृहा, सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता इदं हि दुरात्मनां प्रकृतिसिद्धम् (वर्तते) ।।५२।।

नीतिपथ :– दुर्जनानां दुष्टप्रकृतीराह– **अकरुणत्वमिति**। अकरुणत्वं दयाया अभावः। अकारणविग्रहोऽविद्यमानं कारणं यस्य सोऽकारणः। अहेतुकः स चासौ विग्रहो विरोधः। 'अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ' **इत्यमरः**। परधने परेषामन्येषां धनेऽर्थे परयोषिति परस्य योषिति स्त्रियां च स्पृहा इच्छा। रमणेच्छेत्यर्थः। सुजनबन्धुजनेषु सुजनाः सज्जनाश्च बन्धुजनाश्च तेष्वसहिष्णुतापराधस्यासहनमिदं सर्वं दुरात्मनां दुष्टानां प्रकृतिसिद्धम्प्रकृत्या स्वभावेन, 'प्रकृतिः प्रपञ्चभूते प्रधाने मूलकारणे। स्वभावे' इति **विश्वः**। सिद्धं सम्पन्नं तस्माद् दुस्त्यजमितिभावः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्– 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणात् ।।५२।।

सरलसंस्कृतार्थ :– दयाहीनत्वं निष्कारणकलहः परद्रव्ये परयोषिति च स्पृहा, सुजनेषु बन्धुनेषु च असहनशीलत्वम् इतीदं सर्वं दुर्जनानां स्वभावसिद्धं भवति ।।५२।।

हिन्दी :– निर्दयता, अकारण कलह, दूसरों के धन और स्त्री में इच्छा, सुजन और बन्धु-बान्धवों के प्रति ईर्ष्या भाव– ये सब बातें दुष्टों में स्वभाव से ही सिद्ध होती हैं ॥५२॥

English Translation :– Cruelty, quarreling without any cause, greed for another's wealth and wife and non-forbearance of (words and deeds) of one's own relations and the good, these vices are part of the nature of the wicked. (52)

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाभूषितो[१]ऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ? ॥५३॥

अन्वय : (Prose Order)– विद्ययाभूषितः सन्नपि दुर्जनः परिहर्तव्यः/ मणिना भूषितः असौ सर्पः किं भयङ्करो न ? ॥५३॥

नीतिपथ :– विद्वानपि दुष्टो दूरत एव परिहर्तव्य इत्याह– **दुर्जन इति** । विद्यया शास्त्रज्ञानेन भूषितोऽपि मण्डितोऽपि सन् दुर्जनो दुष्टो जनः पिशुनो वा परिहर्तव्यस्तस्य समीपे नावस्थेयमित्यर्थः । 'स्यात् पिशुनो दुर्जनः खलः' **इत्यमरः** । तमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रढयति । मणिना रत्नेन भूषितः समुद्भासितः सन्नपि असौ सर्पो न भयंकरः किम् । भयंकर एवेत्यर्थः । दृष्टान्तालंकारः वृत्तमानुष्टुभम् ॥५३॥

सरलसंस्कृतार्थ :– सकलविद्यापारीणः सन्नपि दुष्टो विद्वान् दूरत एव परिहर्तव्यः । कुत इत्यत आह– फलकस्थमाणिक्येनालंकृतः सन्नपि सर्पः किं भयप्रदो नास्ति अर्थात् भयंकर एवेत्यर्थः ॥५३॥

हिन्दी :– विद्या से भूषित होने पर भी दुष्ट विद्वान का त्याग करना चाहिए । सर्प यदि मणि से विभूषित हो तो वह क्या भयंकर नहीं होता ? अर्थात् अवश्य होता है ॥५३॥

English Translation :– A wicked man should be avoided even though he be learned. Is not a snake with jewel dangerous ? (53)

जाड्यं ह्रीमति गण्यते, व्रतरुचौ[२] दम्भः, शुचौ कैतवं,
शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, दैन्यं प्रियालापिनि ।

---

१. 'वद्ययालंकृतोऽपि' इत्यपि पाठः ।
२. 'व्रतशुचौ' इत्यपि पाठः ।

तेजस्विन्यवलिप्तता, मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ।।५४।।

अन्वय : (Prose Order)– ह्रीमति जाड्यं, व्रतरुचौ दम्भः, शुचौ कैतवं, शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, प्रियालापिनि दैन्यं, तेजस्विनि अवलिप्तता, वक्तरि मुखरता, स्थिरे अशक्तिः गण्यते। तत् गुणिनां सः कः नाम गुणः भवेत् यो दुर्जनैः न अङ्कितः ।।५४।।

नीतिपथ :– दुर्जनानामेतदेव दौर्जन्यं यत्तैर्गुणिनां सर्वे गुणा अवगुणीकृता इत्याह– **जाड्यमिति**। ह्रीमति ह्री विद्यतेऽस्येति ह्रीमाँस्तस्मिन् लज्जावति, जाड्यं जडस्य भावो जाड्यं मौढ्यम्। यो हि लज्जाशीलो भवति स तैर्जडोऽयमिति शब्द्यते। न तु जुगुप्सितकर्माचरणपराङ्मुखत्वम्। व्रतरुचौ व्रते जपोपवासादिसत्कर्मणि रुचिरुत्कण्ठा यस्य तस्मिन् दम्भः आडम्बरो गण्यते इति शेषः। न त्वनुष्ठातृत्वम्। शुचौ पवित्रे जने कैतवं धौर्त्यम्। 'कपटोऽस्त्री व्याजदंभोपधयश्छद्मकैतवम्' **इत्यमरः ।** न तु पारमार्थिकत्वम्। शूरे निर्घृणता निर्दयता। न तु विक्रान्तत्वम्। मुनौ मननशीले विमतिता मतिराहित्यं, न त्वात्मैक्यानुसंधानतत्परत्वम्। प्रियालापिनि प्रियं मृदु लपतीति तस्मिन्। कोमलं भाषमाणे दैन्यं तुच्छता। न तु श्रवणानन्दकरत्वम्। तेजस्विनि महानुभावे तीक्ष्णे जने अवलिप्तताभिमानः, न तु स्वभावः। वक्तरि भाषणज्ञे मुखरता चपलता वाचाटत्वमसंदिग्धप्रलापित्वमित्यर्थः। स्थिरेऽशक्तिः कार्यकारणसामर्थ्यम्। तत् तस्मात् ततस्तैः पूर्वोक्ताः सर्वे गुणा दोषीकृतास्तेन गुणिनां गुणवतां को नाम गुणो लज्जादिर्यो दुर्जनैः धूर्तैर्नाङ्कित न कलङ्कितः। यत्रैतैर्दोषो न लिप्त ईदृशो न कोऽपि सुगुणिनां न कोऽपि गुणोऽस्तीत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितम् ।।५४।।

सरलसंस्कृतार्थ :– दुर्जनैः लज्जावति मान्द्यं, व्रतरुचौ धर्मध्वजत्वं, पवित्रे जने धौर्त्यं, शूरवीरे दयाराहित्यं, मननशीले बुद्धिहैन्यं, मधुरवादिनी दैन्यं, तीक्ष्णे जने गर्वग्रस्तत्वं, भाषणज्ञे वाचाटत्वं, निश्चले जने अशक्तिर्गण्यते। गुणसम्पन्नानां स को नाम गुणो भवेत् यो गुणो दुर्जनैर्न दूषितः। दुर्जनादूषितो गुणः सगुणिनां न कोऽप्यस्तीत्यर्थः ।।५४।।

हिन्दी :– दुष्ट मनुष्य लज्जा करने वाले में जडता, व्रत की रुचि वाले में दम्भ, पवित्र आचरण में छल, शूर में निष्ठुरता, मौन रखने वाले में बुद्धिराहित्य, प्रियभाषी में दीनता, तेजस्वी में दर्प, भाषणपटु में चाञ्चल्य, शान्त पुरुष में अशक्ति

इस प्रकार गुणियों का वह कौन सा गुण है जिसे दुष्टजनों ने कलंकित नहीं किया है ।।५४।।

English Translation :– Inactivity in the modest, showiness in those who love to keep fasts, pretentiousness in the pure, hard heartedness in the brave, lack of intelligence in those who observe the vow of silence, meanness is those whose speech is sweet, pride in the mighty, loquaciousness in the orators, weakness in the peaceful, thus, there is no virtue which had not been stigmatized by the wicked. (54)

लोभश्चेदगुणेन किं, पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा च किं, शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किंमण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।।५५।।

अन्वय : (Prose Order)– लोभश्चेद् अस्ति अगुणेन किम्, यदि पिशुनतास्ति पातकैः किम्, सत्यञ्चेत् तपसा च किम्, यदि शुचिमनोऽस्ति तीर्थेन किम्, यदि सौजन्यं गुणैः किम्, यदि स्वमहिमास्ति मण्डनैः किम्, यदि सद्विद्या धनैः किम्, यद्यपयशोऽस्ति मृत्युना किम् ।।५५।।

नीतिपथ :– अथ गुणावगुणप्रणालिकामाह– **लोभ इति** । लोभश्चेदस्ति यदि मनो लोभाक्रान्तं तदन्येनावगुणेन किम्, 'सर्वे पदा हस्तिपदे विशन्ति' इति न्यायेन सति लोभे सर्वेषामन्यावगुणानामागमः स्वतो जायते । तस्यैवात्यन्तनिन्दा-वहत्वादिति-भावः । पिशुनता पिशुनस्य भावः, परोक्षे परदोषसूचकतास्ति तर्हि पातकैरन्यैरघैः किम् ? 'पिशुनो दुर्जन खलः' **इत्यमरः ।** तस्या एव पापकारणत्वात् । सत्यञ्चेत् यथार्थभाषणं चेत्तपसा तपश्चरणेन किम् ? तस्यैव परिशोधकत्वादिति भावः । शुचि रागद्वेषादिराहित्येन पवित्रं मनश्चित्तमस्ति तत्तीर्थेन काशीप्रयागादिना गतेनागतेन वा किम् ? तस्यैवापवर्गमूलकत्वादिति भावः । यदि सौजन्यं साधुभावोऽस्ति गुणैरन्यैः किम् ? सौजन्यस्यैव विशेषगुणत्वात् । यदि स्वमहिमा स्वस्य कीर्तिरस्ति चेन्मण्डनैर्भूषणैः किम् ? तस्यैवोपस्कारहेतुभूतत्वादिति भावः ? यदि चेत् सद्विद्योत्तमं ज्ञानमस्ति तर्हि धनैः किम् ? यद्यपयशोऽकीर्तिरस्ति चेन्मृत्युना निधनेन किम् ? 'संभावितस्य

चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते' इति **गीतोक्तेः** । एवं विचार्य सद्गुणार्जनतत्परेण भवितव्यं पुरुषेण । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥५५॥

सरलसंस्कृतार्थ :– धनादिलालसास्ति चेत् तर्हि दुर्गुणानां काऽपि आवश्यकता न वर्तते । यदि परोक्षे परदोषसूचकतास्ति अन्यैः ब्रह्महत्यादिपातकैः किं प्रयोजनम् । यथार्थभाषणमस्ति चेत् चान्द्रायणादिना किं प्रयोजनमस्ति । रागद्वेषादिराहित्येन शुद्धं मनोऽस्ति चेत् प्रयागादिना गतागतेन किम् प्रयोजनम् । सुजनभावोऽस्ति चेत् गुणैः किम् प्रयोजनम् । स्वस्यकीर्तिरस्ति चेत् कुण्डलहाराद्यलंकरणैः किं प्रयोजनम् । उत्तमं ज्ञानमस्ति तर्हि धनैः किम् । यदि अपकीर्तिरस्ति तर्हि मरणेन किं प्रयोजनम् । अतो लोभादिकं विहाय सत्यादि ग्राह्यं विदुषा सर्वदैव ॥५५॥

हिन्दी :– यदि मनुष्य में लोभ है तो अन्य अवगुणों की क्या आवश्यकता ? यदि परदोषसूचकता है तो अन्य पापाचरण से क्या कार्य ? यदि सत्य हो तो तप से क्या ? पवित्रमन हो तो तीर्थयात्रा से क्या ? सुजनता हो तो गुणों से और स्वमहिमा हो तो आभूषणों की क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम ज्ञान है तो धन की क्या आवश्यकता ? और यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या आवश्यकता ? ॥५५॥

English Translation :– Greed alone is a sufficient evil and so is backbiting. Where there is truthfulness no further penance is needed. Purity of heart needs no pilgrimage, nor does gentlemanliness require other virtues. Fame is enough of an ornament and learning enough of wealth. So is ignominy more than death. (55)

शशी दिवसधूसरो, गलितयौवना कामिनी,
सरो विगतवारिजं, मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्धनपरायणः, सततदुर्गतिः सज्जनो,
नृपाङ्गणगतः खलो, मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

अन्वय : (Prose Order)– दिवसधूसरः शशी, गलितयौवना कामिनी, विगतवारिजं सरः, स्वाकृतेरनक्षरं मुखम्, धनपरायणः प्रभुः, सततदुर्गतिः सज्जनः, नृपाङ्गणगतः खलः (इति) सप्त मे मनसि शल्यानि ॥५६॥

नीतिपथ :– जगति सप्तदुःखस्थानानीत्याह– **शशीति** । दिवसधूसरः दिवसे धूसर ईषत्पाण्डुः । 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः' **इत्यमरः** । शशी चन्द्रश्च । गलितयौवना

गलितं जीर्णं यौवनं युवतिभावो यस्याः सा, कामिनी प्रमदा च। विगतवारिजं विगतानि वारिजानि यस्मात्तत् प्रणष्टसरसिजं सरस्तडागम्। स्वाकृतेः सुशोभनाकृतिर्मुखरूपं यस्य तस्य अनक्षरमविद्यमानमक्षरं यस्मिंस्तदनक्षरं विद्यारहितं मुखमास्यम्। धनपरायणो धनमेव वित्तमेवपरं सर्वोत्कृष्टमयनं स्थानं यस्य सः। धनसंग्रहमात्रतत्परः, न तु गुणग्राही। प्रभुः स्वामी। सततदुर्गतिः निरन्तरदारिद्र्ययवान् सज्जनश्च। नृपाङ्गणगतो नृपस्याङ्गणं राजप्रासादः तत्र गतः प्राप्तो लब्धप्रवेशो राजगृहे। खलो दुष्टः। इति सप्त मे मम भर्तृहरेर्मनसि सप्त शल्यानि बाणवदरुन्तुदानीति भावः। दीपकालङ्कारः पृथ्वीवृत्तम् ॥५६॥

सरलसंस्कृतार्थ :– अह्नि निस्तेजस्कः चन्द्रः, भ्रष्टनूतनवयस्का कान्ता, पुण्डरीकषण्डहीनं कासारः, सुन्दरपुरुषस्य शास्त्रविभ्रष्टं मुखं, धनलुब्धः राजा, निरन्तरविपद्ग्रस्तः सज्जनः तथा राजगृहान्तवर्ती दुर्जनः, इत्येवं सप्त मम मनसि दुःसहदुःखजनकत्वाद् शल्यानि सन्ति ॥५६॥

हिन्दी :– दिन का निस्तेज चन्द्रमा, नष्टयौवना कामिनी, कमलों से रहित तालाब, सुन्दर मनुष्य का विद्यारहित मुख, धनमात्र पर प्राणदेनेवाला स्वामी, सदा दरिद्री सज्जन, और राजा के सम्पर्क में आया दुष्टपुरुष, ये सात मेरे हृदय में शूल के तुल्य खटकते हैं ॥५६॥

English Translation :– The following sting me to the heart, like an arrow :–

The moon discoloured in the daylight, the woman who has passed her youth, the tank where there are no lotuses, the beautiful faces without learing, a master who has consideration for wealth only, an indignant gentleman, the wicked favourite of a king. (56)

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

अन्वय : (Prose Order)– चण्डकोपानां भूभुजां कश्चिदात्मीयो नाम न, पावकः स्पृष्टः (सन्) जुह्वानं होतारम् अपि दहति ॥५७॥

नीतिपथ :– कष्टतरसेव्या राजान इत्याह– **नेति**। चण्डकोपानां चण्डःकोपा येषान्तेषामिति। अत्यन्ततीव्रक्रोधानाम्। 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' **इत्यमरः**। भूभुजाम् भुवं भुज्जन्ति तेषाम्। कश्चित्कोऽपि जन आत्मीयो निजो नाम न संभावनीय एव।

दृष्टान्तेन स्पष्टयति पावकोऽनलः स्पृष्टः सन् हस्तेनालिङ्गितः सन् जुह्वानं हविर्ददानं मन्त्रैः सत्कुर्वन्तञ्च होतारमपि हवनकर्तारमपि दहति ज्वलति । 'कृशानुः पावकोऽनलः' **इत्यमरः** । वृत्तमानुष्टुभम् ॥५७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– उग्राणां राज्ञां कश्चिदपि पुमान् आत्मीयत्वेन प्रसिद्धो न भवति । यतो हि तेभ्यः सर्वो बिभेत्येव । यथा आज्यपुरोडाशादिदानेन सत्कुर्वन्तं होतारमपि अग्निः स्पृष्टः सन् सन्तापयति ॥५७॥

हिन्दी :– अत्यन्त उग्र राजाओं का कोई भी आत्मीय अथवा स्वजन नहीं होता । क्योंकि, अग्नि, छूने पर हवन करने वाले होता को भी जला डालती है ॥५७॥

English Translation :– No one can be the favourite of the kings whose anger is rash. Fire, when touched, burns even the sacrificer who is affering oblations to it. (57)

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको[१] वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा,[२] दूरतश्चाऽप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाऽभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

अन्वय : (Prose Order)– मौनात् मूकः, प्रवचनपटुः वातुलो जल्पको वा । पार्श्वे सदा वसति च धृष्टः, दूरतः च प्रगल्भः, क्षान्त्या भीरुः, यदि न सहते प्रायशः न अभिजातः, सेवाधर्मः परमगहनो योगिनाम् अपि अगम्यः (अस्ति) ॥५८॥

नीतिपथ :– सेवाधर्मोऽतिकठिन इत्याह– **मौनादिति** । सेवको मौनाद्यदि स्वामिसविधे मूकस्तिष्ठति तदा स तस्माद् हेतोर्मूकः संभाव्यते । नायं जानाति वक्तुं जिह्वा वास्य नास्तीति निन्द्यते । प्रवचनपटुरथ प्रवचने विषयव्याख्याने पटुश्चतुरस्तर्हि वातुलोऽतिवादी वातजरोगग्रस्तो वा, जल्पको जल्पतीति असंबद्धप्रलापी वा भवति । 'स्याज्जल्पकस्तु वाचालः' **इत्यमरः** । सदा निरन्तर स्वामिनः पार्श्वे सविधे तिष्ठति चेत्तर्हि धृष्टोऽविनीत इति विभाव्यते । महानयं शठोऽलज्जश्च यत् सर्वदा ममाग्र एव तिष्ठति । दूरतो विप्रकृष्टे देशे अप्रगल्भोऽप्रौढो भवति । क्षान्त्या क्षमया भीरुर्भयशीलो, यदि चेन्न सहते प्रभुवचस्तद् बहुशः प्रायः नाभिजातः कुलवान्नास्ति । 'अभिजातस्तु

---

१. 'वाचको जाल्पको वा' इत्यपि पाठः ।
२. 'भवति च वसन्दूरतोऽप्य' इत्यपि पाठः ।

कुलजे बुधे' **इत्यमरः** । यतः सर्वथा स्थितोऽपि स्वामिनेत्थं निन्द्यते सेवको न क्वचित् प्रशस्यते तस्मात् सेवाधर्मः सेवारूपस्य कर्तव्यस्य परिपालनं परमगहनः परमश्चासौ गहनः, अतिकठिनो योगिनामपि ब्रह्मसाक्षात्कुर्वतामगम्योऽबोध्योऽप्रतिपाल्यश्च विधिवत् । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । वृत्तं मन्दाक्रान्ता– 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ न तौ ताद्गुरु चेत्' इति लक्षणात् ।।५८।।

सरलसंस्कृतार्थ :– यदि सेवकः अचितानुचितं न वदति चेत् मूकोऽयं, वदति चेद्वावदूकोऽयं, समीपे स्थितश्चेन्निर्लज्जोऽयं दूरे तिष्ठति चेद् अव्यवहारज्ञोऽयं वार्तां सहते चेदभीरुर्नसहते चेदनार्यः इत्यारोपास्तस्मिन् क्रियन्ते । अतएव सेवकेन स्वामिनो मनस्तोषः कथं करणीय इति सम्यक्तया वेत्तुं न कोऽपि प्रभवति ।।५८।।

हिन्दी :– सेवक यदि चुप रहता है तो गूँगा, भाषणचतुर है तो अतिवक्ता, समीप रहता है तो ढीट, दूर रहता है तो अकुशल, सहनशील है तो डरपोक और यदि असहनशील है तो अकुलीन कहलाता है । इस हेतु यह सेवा धर्म अतिकठिन है जो योगियों हेतु भी अगम्य है ।।५८।।

English Translation :– If a servant keeps silence he is criticised as dumb. If he is clever at explaining the affairs then either he is thought a flatterer or a babbler. If he bears an insult then he is considered coward and if he does not brook it then, often, he is said to be a fool. If he remains near the master, he is considered obstinate, if far, then not bold enough. Thus the duties of a servent are very hard. Even yogies cannot discharge them. (58)

उद्भासिताऽखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृत[1]निजाऽधमकर्मवृत्तेः ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः, सुखमास्यते[2] कैः ।।५९।।

अन्वय : (Prose Order)– उद्भसिताऽखिलस्य विशृङ्खलस्य प्रागजातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः दैवात् अवाप्तविभवस्य गुणद्विषः अस्य नीचस्य गोचरगतैः कैः सुखमास्यते ।।५९।।

---

१. 'प्रोद्गाढविस्मृत' इत्यपि पाठः ।

२. 'सुखमाप्यते' इत्यपि पाठः ।

नीतिपथ :– स्वामिनो दुःखदा एव भवन्ति, तदेवाह– **उद्भसितेति** । उद्भासिताखिलखलस्योद्भासिताः स्वखलताधिक्येन प्रकाशिता अखिला समग्रभूमण्डलवर्तिनः खला दुष्टाः येन तस्य, अधिकारप्रदानेन पुरस्कृताशेषदुर्जनस्येत्यर्थः । विशृङ्खलस्य विगता शृङ्खला निगडो यस्य तस्य निरङ्कुशस्य गजस्येव । प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः प्राग्जाता पूर्वजन्मन्युत्पन्ना समयेऽस्मिन् विस्तृता वृद्धिंगता निजाधमकर्मणां स्वकीयदुष्प्रवृत्तीनां वृत्तिर्व्यापारो यस्य तस्य । दैवात् विधिनियोगादवाप्तविभवस्यावाप्तः प्राप्तो विभव ऐश्वर्यं येन तस्य । गुणद्विषः सुगुणनिन्दकस्य । अस्य नीचस्य स्वामिनः राज्ञो गोचरगतैः गोचरं वशं गता प्राप्तास्तैः, कैर्जनैः सुखं सानन्दमास्यते स्थातुं शक्यते ? न कैरपीत्यर्थः काक्वा प्रतीयते । काव्यलिङ्गमलंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।।५९।।

सरलसंस्कृतार्थ :– यः सदा दुर्जनान् दुष्कर्मसु प्रेरयति, निरङ्कुशः सन् स्वकीयप्राक्तननीचकर्मव्यापारैरेव व्यवहरति सः यदि अदृष्टवशात्कुतश्चिद् धनमपि प्राप्नुयाच्चेत् तद्दृष्टिपथमुपेतस्य कस्य कल्याणं भविष्यति न कस्यापीत्यर्थः । अतो न नीचाश्रयः कर्तव्य इति भावः ।।५९।।

हिन्दी :– समस्त दुष्टों के भूषण, निरंकुश, पूर्वजन्मों में उत्पन्न हुई तथा बढी हुई नीचकर्मों में प्रवृत्तिवाले, भाग्य से ऐश्वर्य प्राप्त किये हुए गुणों के शत्रु इस नीच स्वामी के वश में पड कौन सुख से रह सकता है? अर्थात् कोई नहीं ।।५९।।

English Translation :– Who can be happy with this master, who is mean and chief of all the wickeds and is quite irresponsible, whose tendencies have been shaped by mean acts done in previous lives, who is an enemy to all virtue but who has attained to wealth by a good luck. (59)

आरम्भगुर्वी, क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा, वृद्धिमती[1] च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्ध-परार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ।।६०।।

अन्वय : (Prose Order)– खलसज्जनानां मैत्री दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेवाराम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी पुरा लघ्वी पश्चात् वृद्धिमती (भवति) ।।६०।।

---

१. 'वृद्धिमुपैति' इत्यपि पाठः ।

नीतिपथ :– मैत्रीभेदमाह सदसतोः– **आरम्भेति**। खलसज्जनानां खलाश्च सज्जनाश्च तेषां, दुष्टानां शिष्टानां च मैत्री सख्यं क्रमशो दिनस्य दिवसस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना पूर्वमर्धं पूर्वार्धं पूर्वोऽर्धभागः परमर्धं परार्धं पश्चिमोऽर्धभागास्ताभ्यां भिन्ना विभक्ता नितरां पृथग्भूता छायेवानातप इव प्रतिबिम्ब इवारम्भगुर्वी ! आरम्भे गुर्वी प्राक्काले दीर्घा वृद्धिमावहन्ती वा ततश्चक्रमेणोत्तरोत्तरं क्षयिणी क्षयोऽस्या अस्तीति नश्यन्ति दिनस्य मध्यं यावदारम्भदीर्घा परिणामे नश्यन्ती च परार्धे तु पुरा पूर्वं लघ्वी ह्रस्वा पश्चाच्च यथाक्रमं वृद्धिमती प्रवर्धमाना उपमालङ्कारः। उपजातिवृत्तम् ॥६०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यथा छाया पूर्वाह्णे पूर्वं बृहद्रूपा पश्चाच्च क्रमशो क्षीयमाणा स्वल्पा तथा च अपराह्णे पूर्वं स्वल्पा पश्चाच्च क्रमशो वर्धमाना दृश्यते तथैव दुर्जनमैत्री पूर्वाह्णच्छायेव प्रारम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी च भवति सुजनमैत्री तावदपराह्णछायेवादौ लघ्वी ततो वर्धिष्णुश्च भवतीति ॥६०॥

हिन्दी :– खलों तथा शिष्टों की मित्रता दिन के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्द्ध की छाया के समान अलग-अलग होती है। (यथा) खलों की मित्रता छाया की तरह आरम्भ में बडी तथा फिर क्रम से घटती हुई होती है और सज्जनों की मित्रता उत्तरार्ध की छाया की तरह पहले छोटी तथा पश्चात् बढने वाली होती है ॥६०॥

English Translation :– The friendship of the good and that of the bad is different from each other like the shadow of a man, cast during the first and the last halves of the day. The friendship of the wicked is great in the beginning but gradually dwindling while that of the good is small at first but develops afterwards. (60)

मृग-मीन-सज्जनानां तृण-जल-सन्तोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ।।६१।।

अन्वय : (Prose Order)– तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनां मृगमीनसज्जनानां लुब्धकधीवरपिशुना जगति निष्कारणवैरिणः (भवन्ति) ॥६१॥

नीतिपथ :– जगति के केषामकारणशत्रव इत्याचष्टे– **मृगेति**। तृणजलसंतोष-विहितवृत्तीनां तृणं च घासो जलश्च सन्तोषश्चात्मतृप्तिश्च तैर्विहिता वृत्तिर्जीवनयात्रा यैस्तेषां मृगमीनसज्जनाश्च साधवश्च तेषां लुब्धकधीवरपिशुना लुब्धकश्च व्याधश्च धीवरश्च दाशः मत्स्योपजीवी च पिशुनश्च सूचकश्च। 'व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकश्चः

स:' 'कैवर्ते दाशधीवरौ' इति **चामरः** । एते जगति संसारे निष्कारणवैरिणो निष्कारणं हेतुं विना वैरिण: शत्रवो भवन्ति । घातुका इत्यर्थः । यथासंख्यालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥६१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– कान्तारेषु तृणभक्षिणां वन्यपशूनां व्याधाः, जलेषु स्वच्छन्दं विचरतां मत्स्यानां धीवराः, सन्तोषवृत्तीनां सज्जनानां दुर्जनाश्च निर्हेतुकमेव विद्वेषिणो भवन्ति ॥६१॥

हिन्दी :– घास, जल और संतोष से निर्वाह करने वाले हिरण, मछलियों और सज्जनों के, व्याध, धीवर और दुर्जन अकारण वैरी होते हैं ॥६१॥

English Translation :– A hunter, fisherman and a backbiter are the enemies (without any cause) to a deer, fish and good man all of whom live upon grass, water and contentment, respectively. (61)

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे,[१] परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं, स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम् ।
भक्तिः शूलिनिशक्तिरात्मदमने, संसर्गमुक्तिः खले,
येष्वेते निवसन्ति[२] निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो[३] नमः ॥६२॥

अन्वय : (Prose Order)– सज्जनसङ्गमे वाञ्छा, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता, विद्यायां व्यसनम्, स्वयोषिति रतिः, लोकापवादाद् भयम्, शूलिनि भक्तिः, आत्मदमने शक्तिः, खले संसर्गमुक्तिः, एते निर्मलगुणा येषु वसन्ति तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥६२॥

नीतिपथ :– नमस्करणीयाः के जना इत्युत्तरति– **वाञ्छेति** । सज्जनसङ्गमे वाञ्छा सज्जनैः सद्भिः सह सङ्गमे सम्बन्धे वाञ्छाभिलाषः, न तु जिहासा । परगुणे परेषामन्येषां गुणे सत्प्रवृत्तौ प्रीतिः स्नेहः, न तु दोषापादनम् । गुरौ विद्योपदेष्टरि नम्रता विनयः । विद्यायां वेदान्तादिशास्त्रपरिशीलने व्यसनमनुरागः । स्वयोषिति स्वस्य योषिति निजदारेषु रतिः संभोगः, न तु परदारेषु । लोकापवादाद् लोकस्य संसारस्यापवादाद् निन्दाया भयं भीतिः । न तु निर्लज्जत्वम् । शूलिनि परदेवतायां महादेवे भक्तिः

---

१. 'सज्जनसङ्गतौ' इत्यपि पाठः ।

२. 'वसन्ति' इत्यपि पाठः ।

३. 'महद्भ्यो' इत्यपि पाठः ।

श्रद्धा । आत्मदमने आत्मनो दमनन्तस्मिन् वशीकरणे इन्द्रियाणां मनसो वा । शक्तिर्बलं सामर्थ्यम् । खलैः दुर्जनैः सह संसर्गमुक्तिः सङ्गत्यागः, न तु तत्सहवासाभिलाषः । इत्येते परिगणिता निर्मलगुणा निर्मलाश्च ते गुणाः, निष्कलङ्का गुणाः पवित्रधर्मा यत्र वसन्ति येषु जनेषु तिष्ठन्ति तेभ्यो नरेभ्यो नमो वन्दामहे तान् सुगुणालङ्कृतानित्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥६२॥

सरलसंस्कृतार्थ :– साधुसमागमे अभिलाषः, परगुणे प्रीतिः, विद्योपदेष्टरि प्रह्वीभावः, ज्ञानप्राप्तौ अनुरक्तिः, स्वधर्मपत्न्यां स्नेहः, लोकनिन्दाभीतिः, शिवे अनुरागः, आत्मनिग्रहे शक्तिः, दुर्जनैः सह सङ्गत्यागः, –एते श्लोकोक्ता गुणाः येषु भवन्ति ते महान्तो भवेयुः, अतस्ते नमस्करणीयाः, तेषां चरित्रमनुकरणीयं भवति ॥६२॥

हिन्दी :– सत्सङ्ग की इच्छा, दूसरे के गुणों में प्रेम, गुरुजनों के प्रति विनय, विद्यानुराग, स्वस्त्री में प्रेम, लोकनिन्दा से भय, महादेव में भक्ति, मन तथा इन्द्रियों के वशीकरण में शक्ति, दुष्टों के संसर्ग का त्याग, ये निर्मलगुण जिनमें रहते हैं उन जनों के लिये नमस्कार है ॥६२॥

English Translation :– A bow to the persons to whom belong the following good qualities:–

(1) Adesire for the company of the good. (2) A love for the virtues of others. (3) Respect for elders. (4) Fondness for learning (5) An attachment towards one's own wife. (6) A fear of the world's censure (7) A devotion to god shiva. (8) A power of control over one's own self. (9) An avoidance of the company of the wicked. (62)

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः ।
यशसि चाऽभिरुचि[१]र्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

अन्वय : (Prose Order)– विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा,

---

१. 'चाभिरतिः' इत्यपिं पाठः ।

सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि चाभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम् इदम् महात्मनां प्रकृतिसिद्धम् ॥६३॥

नीतिपथ :– महात्मनां प्रकृतीराह– **विपदीति**। विपदि दुःखे धैर्यन्धीरता विचाल्यत्वम्। अथानन्तरमभ्युदये सम्पत्तौ क्षमा सहिष्णुत्वं परापकारसहनं वा। सदसि सभायां वाक्पटुता वाचि पटुर्वाक्पटुस्तस्य भावस्तत्ता, 'सभासमितिसंसदः' 'वाचोयुक्तिपटुर्वाग्मी' इति **चामरः**। भाषणचातुरी। युधि रणरङ्गे विक्रमः शौर्यप्रदर्शनम्, न तु पलायनम्। यशसि कीर्तौ चाभिरुचिः स्पृहा, न त्वनादरः। श्रुतौ वेदेऽत्र श्रुतिशब्दोऽन्येषामपि शास्त्राणामुपलक्षकः व्यसनमभिलाषः। इदं प्रत्येकं वस्तु महात्मनां महान् गुरुरात्मा येषां तेषां महानुभावानामित्यर्थः। प्रकृतिसिद्धं प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं सम्पन्नम्। नत्वागतेन निमित्तेन केनचिदिदं महात्मसु जायते। 'सांसिद्धिप्रकृती समे। स्वरुपं च स्वभावश्च निसर्गश्च' **इत्यमरः**। द्रुतविलम्बितवृत्तम् ॥६३॥

सरलसंस्कृतार्थ :– महानुभावानां स्वाभाविकोऽयं गुणः यत्ते आपत्काले व्याकुला न भवन्ति, संपदि च सर्वं सहन्ते, विद्वत्सभायां सरसवचनेन सर्वानावर्जयन्ति, रणरङ्गे लम्पटा भूत्वा न पलायन्ते, यशोभिवृद्धये निरन्तरं प्रयतन्ते, वेदशास्त्राभ्यसने सततं प्रवृत्तास्तिष्ठन्ति ॥६३॥

हिन्दी :– विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में सहिष्णुता, सभा में वाक् चातुरी, युद्ध में वीरता, यश में उत्कण्ठा, वेद-शास्त्रों विषयक अनुराग, ये गुण महानुभावों स्वभाव में ही पाये जाते हैं ॥६३॥

English Translation :– The following virtues are natural in magnanimous persons :–

(1) Mental composure in adversity. (2) For bearance in adversity (3) A skill in speaking in an assembly. (4) Valour in war (5) Eagerness to win a good name. (6) A regular craving for the study of the vadas. (63)

प्रदानं प्रच्छन्नं, गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं, सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां, निरभिभवसाराः परकथाः,
सतां केनोदिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

अन्वय : (Prose Order)– प्रच्छन्नं प्रदानम्, गृहम् उपगते सम्भ्रमविधिः,

प्रियं कृत्वा मौनं, सदसि चाप्युपकृते: कथनम्, लक्ष्म्याम् अनुत्सेक:, निरभिभवसारा: परकथा: इदं विषमम् असिधाराव्रतं सतां केनोद्दिष्टम् ? ॥६४॥

नीतिपथ :– सतां कतिपयानि कठिनव्रतानि तावन्निरूपयति– **प्रदानमिति** । प्रच्छन्नं सुगुप्तं यथास्यात्तथा प्रदानं साहाय्यकरणम् । तथाभूतस्य दानस्य महाफलश्रवणादिति भाव: । गृहं निजावासमुपगते प्राप्तेऽतिथौ संभ्रमविधि: प्रत्युत्थानाभिवादनादिसत्वरव्यापारविधानं च । प्रियमन्यस्य किमपि हितं कृत्वा मौनन्तस्याप्रकाशनम् । अपरिकीर्तनमिति यावत् । 'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्' इति मनुवचनादिति भाव: । सदसि च जनसंघाते च स्वस्मिन्नन्येन कृताया उपकृतेरुपकारस्य कथनं कृतज्ञतापूर्वकप्रकाशनम्, न तु तत्र तुष्णींशीलत्वम् । लक्ष्म्यां सम्पत्तौ सत्यामप्यनुत्सेको गर्वाभाव:, न तु मदान्धत्वम् । निरभिभवसारा निष्क्रान्तोऽभिभवादिति, अविद्यमानोऽभिभवो यस्मिन्निति वा, तादृश: सारो यासान्ता, अनिन्दापरा: परकथा: पुरुषान्तरप्रसङ्गाश्च, न तु गर्हणपरा: । इदं वर्णितं विषमं कठिनमसिधाराव्रतमसिधारावत् खड्गधारावत् तीक्ष्णं व्रतं निश्चितं तप: सतां केन दैवातिरिक्तेनोपदेशकेनोद्दिष्टमुपदिष्टम् ? शिखरिणी वृत्तम् ॥६४॥

सरलसंस्कृतार्थ :– गुप्तदानं, गृहागते आतिथ्यं, उपकारं कृत्वा अपरिकीर्तनं, सभायां परोपकारप्रख्यापनं, सम्पत्यां गर्वराहित्यं, परवार्ताप्रकरणे निन्दावर्जनमिदं कठिनं खड्गधारेव दुष्करणीयं व्रतं सज्जनानां कृते केन प्रदर्शितम् ॥६४॥

हिन्दी :– गुप्त दान, गृह में आने पर आतिथ्य सत्कार, प्रिय करके न कहना, अन्य द्वारा किये उपकार का सभा में कथन, सम्पत्ति होने पर भी गर्व न होना, दूसरों की निन्दा रहित चर्चा– यह कठिन तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण व्रत सज्जनों को किसने सिखाया है ॥६४॥

English Translation :– Who has tought the good persons the hard vow described below :– the good Vow that is as sharp as the edge of a sword :–

(1) Giving secretly (2) Honouring guests (3) Silence after doing good (4) A knowledgeing benefits received in an assembly (5) Modesty in prosperous times (6) Talking of others without dispraising them. (64)

करे श्लाघ्यस्त्याग:, शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी, विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।

हृदि स्वस्था[१] वृत्तिः, श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ।।६५।।

अन्वय : (Prose Order)– करे श्लाघ्यः त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता, मुखे सत्या वाणी, भुजयोः विजयि अतुलं वीर्यं, हृदि स्वस्था वृत्तिः, श्रवणयोः च अधिगतं श्रुतम्, इदम् ऐश्वर्यं विना अपि प्रकृतिमहतां मण्डनम् (अस्ति) ।।६५।।

नीतिपथ :– ये प्रकृत्यैव महान्तस्तेषां भूषणानि परिगणयति– **कर इति** । करे हस्ते 'बलिहस्तांशवः कराः' **इत्यमरः** । श्लाघ्यः श्लाघितुं योग्यः प्रशंसनीयस्त्यागो दानं मण्डन्, न तु कङ्कणम् । शिरसि मूर्ध्नि गुरुपादप्रणयिता गुरोरुपाध्यायस्य पादौ चरणौ तयोः प्रणयितानुरागित्वम् न तु मणिहिरण्यादि । मुखे आनने सत्या ऋता वाणी सूनृतभाषणं मण्डनम्, न तु तमाखुचर्वणादि । 'आननं लपनं मुखम्' **इत्यमरः** । भुजयोर्बाह्वोरतुलममेयं विजयि जयनशीलं वीर्यं बलं मण्डनम्, न तु केयूरादि । हृद्यन्तरङ्गे स्वच्छा वृत्तिश्चेष्टा मण्डनम्, न तु हाररुचकादि । श्रवणयोः कर्णयोरधिगतं श्रुतं शास्त्रमेव मण्डनम्, न तु कुण्डले । इदं पूर्वोक्तदानादिकं सर्वमैश्वर्येण धनरत्नसम्पत्त्या विनापि प्रकृतिमहतां प्रकृत्या स्वभावेन महतां गुरुणां सौजन्यसम्पन्नानामिति यावत्, मण्डनं भूषणम् । शिखरिणीवृत्तम् ।।६५।।

सरलसंस्कृतार्थ :– जगति प्राकृत-आभूषणानां कृते द्रव्यमपेक्षते किन्तु करे दानं, शिरसि गुरुभक्तिः, मुखे सत्यावाणी, भुजयोः शौर्यम्, हृदये निर्मला चित्तवृत्तिः, कर्णयोः शास्त्राध्ययनं च महापुरुषाणां द्रव्यनिरपेक्षाण्येवाभूषणानि सन्ति ।।६५।।

हिन्दी :– निसर्गतः सज्जनों के अधोलिखित भूषण होते हैं चाहे उनके पास सम्पत्ति हो अथवा न हो-हाथ में प्रशंसनीय दान, शिर में बडों के चरणों में नम्रता, मुख में सत्यवचन, भुजाओं में जयनशील अपरिमित वीर्य, हृदय में शान्तवृत्ति और कानों में प्राप्त (कर्णेन्द्रिय द्वारा प्राप्त) शास्त्रज्ञान ।।६५।।

English Translation :– The following are the ornaments of those that are naturally great, and they can wear them even if they are poor. In hand a creditable charity. On head a devotion to the feet of the elders. On head a devotion to the feet of the elders. In their mouths

१. 'स्वच्छा' इत्यपि पाठः ।

a true speech. On the arms an immeasurable strength and a vanquishing force. For the ear the hearing of shastras which they follow implicitly. (65)

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।

आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ।।६६।।

अन्वय : (Prose Order)– सम्पत्सु महतां चित्तम् उत्पलकोमलं भवति आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशं (भवति) ।।६६।।

नीतिपथ :– अथापत्सम्पदोः महतां चित्तवृत्तिं वर्णयति– **सम्पत्स्विति**। सम्पत्सु सुखसमये महतां महानुभावानां चित्तं हृदयमुत्पलकोमलमुत्पलवत् कोमलं मृदुलं भवति। आपत्सु दुःखेषु च महाशैलशिलासंघातकर्कशं महच्च तच्छैलं सुदीर्घः पर्वतस्तस्य यः शिलासंघातः शिलानां पाषाणानां संघातः समूहस्तद्वत् कर्कशं कठिनं भवति। न त्वधैर्यविश्लथमित्यर्थः। उपमालङ्कारः। आनुष्टुभं वृत्तम् ।।६६।।

सरलसंस्कृतार्थ :– ये प्रकृत्या महान्तः सम्पत्सु सत्सु ते दयालवः भवन्ति, आपत्सु तु महाशैलशिलासंघात इव कठोरहृदया भूत्वा तां सहन्ते ।।६६।।

हिन्दी :– सम्पत्तियों (सुख के दिनों) में सज्जनों का चित्त कमल की भांति कोमल और आपत्तियों (दुःख के दिनों) में विशालपाषाणसमूह के समान कर्कश अर्थात् अविचलित होता है ।।६६।।

English Translation :– The hearts of great men become soft as a lotus in time of prosperity and in adversity as hard as a strong heap of a mighty mountain. (66)

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते[१],

मुक्ताऽऽकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते[२] ।

[३]स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते[४] ।।६७।।

---

१. 'श्रूयते' इत्यपि पाठः ।

२. 'दृष्यते' इत्यपि पाठः ।

३. 'अन्तःसागर' इत्यपि पाठः ।

४. 'जुषामेवं विधावृत्तयः' इत्यपि पाठः ।

अन्वय : (Prose Order)– सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते । तदेव नलिनीपत्रस्थितं मुक्ताकारतया राजते । स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते । प्रायेण देहिनाम् अधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतः (जायते) ॥६७॥

नीतिपथ :– अथाधममध्यमोत्तमवृत्तिमाह– **सन्तप्तायसि** । सन्तप्तायसि सन्तप्तञ्चोष्णञ्च तदयस्तस्मिन् । संस्थितस्य पयसः स्थापितस्य पतितस्य वा जलस्य नामापि लेशोऽपि न ज्ञायते क्षणेनैव क्व विलुप्तमिति नावगम्यते । मूलतो ध्वस्तमेव भवतीत्यर्थः । तदेव पयो नलिनीपत्रस्थितं नलिन्याः कमलिन्याः पत्रे दले स्थितं सत्, मुक्ताकारतया मुक्ताया मुक्ताफलस्याकारः सादृश्यं तदभावस्तत्ता तया राजते शोभते । स्वात्यां नक्षत्रविशेषे सागरशुक्तिमध्यपतितं सागरस्य समुद्रस्य शुक्तेर्मध्ये गर्भे पतितं गतं सत् तदेव पयो मौक्तिकं मुक्ताफलं जायते भवति । स एव पयोबिन्दुर्दुष्टस्य तप्तायसः सम्पर्कात् प्रणश्यति ततो न केवलमधमताहेतुर्दुष्टसंसर्गोऽपि तु प्राणहानिकरः । स एव जलबिन्दुः पद्मपत्रस्थितो यद्यपि न तात्त्विकमुक्ताफलतां परन्तत्सादृश्यन्तु भजत एवेति मध्यमानां संसर्गो मध्यमता हेतुः । पुनश्च स एवोदबिन्दुः स्वात्यां शुक्तौ सिक्तं सन्मौक्तिकतां भजत इति सत्सन्निधानप्राप्त्याकिञ्चनोऽपि धनकुबेरायते जडोऽपि वा वाचस्पतीयते चेति संसर्गस्यैवायं प्रभावो नाम यदुत्तममध्यमाधमगुणा जनेषु जन्यन्त इति । प्रायेण बहुशः । प्रायेणेति कथनं तु क्वचित्प्राक्तनप्रबलसंस्कारवशाद् दुष्टसंसर्गेऽपि नोत्तमतापगमः इत्यभिप्रायेण । देहिनां प्राणिनामुत्तममध्यमाधमगुणाः उत्तमश्च मध्यश्चाधमश्चोत्तममध्यमाधमाः । ते चामी गुणाः । उत्कृष्टमध्यमनिकृष्टतारूपा धर्माः संसर्गतः सम्पर्काद् भवन्ति संसर्गादिति संसर्गतः । शार्दूलविक्रीडितम् ॥६७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– संसर्गस्य अयमेव हि महिमा यत् प्रायः मनुष्यः अधमसंसर्गान्नीचोभूत्वा विनश्यति, मध्यमसंसर्गान्साधारणः, उत्तमसंसर्गाच्चोत्तमो भवति, यथा जलबिन्दुः सम्यगग्नितप्तायः पिण्डे पतितः सन् नश्यति, नलिनीपत्रे मौक्तिकरुपेण दृश्यते, शुक्तिमध्यगतं तु मुक्तैव भवति । अतः महदाश्रय एव कर्तव्यः ॥६७॥

हिन्दी :– गर्म लोहे पर स्थित जल का नाम भी नहीं रहता । वही जल कमल के पत्र पर ठहरे हुए मोती के समान शोभित होता है । स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पडकर वही जल बिन्दु मोती हो जाता है । प्रायः उत्तमता, मध्यमता एवं निकृष्टता ये गुण मनुष्य में संगति से ही होते हैं ॥६७॥

English Translation :– Even the existence of a drop of water placed upon a red hot piece of iron, becomes unknown. The same when placed on a leaf of

lotus flower shines like a pearl. In swati constellation, the same drop of water, is changed into a real pearl, if the drop has fallen into an oyster. Usually men acquire the highest average, and the lowest virtues through association with others. (67)

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरिव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते।।६८।।

अन्वय : (Prose Order)– यः सुचरितैः पितरं प्रीणयेत् सः पुत्रः, यद् भर्तुरिव हितम् इच्छति तत् कलत्रम्, आपदि सुखे च यत् समक्रियं तत् मित्रम्, एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

नीतिपथ :– अधोलिखितानि त्रीणि वस्तूनि पुण्येनैव प्राप्यन्ते– **य इति**। यः सुचरितैः शोभनानि च तानि चरितानि तैः। सद्वृत्तेन पितरं प्रीणयेत्संतोषयेत् स पुत्रः पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रोऽपत्यम्। यद्भर्तुरिव पत्युर्हितमिच्छति हितं कल्याणमिच्छति तदेव कलत्रं भार्या, 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' **इत्यमरः**। यदापद्यनर्थसङ्कटे सुखे संपदि च समक्रियं समा सदृशी क्रिया चेष्टा यस्य तदिति, अविषमाचारमित्यर्थः। यो यथा विभवे सति व्यवहरति तथैव समयपरिवृत्तावपीति भावः। एतत्त्रयमिमानि त्रीणि वस्तूनि जगति संसारे त्रयाणामवयवानां समुदायस्त्रयम्। पुण्यकृतः पुण्यानि कुर्वन्तीति पुण्यकृतः धन्या लभन्ते प्राप्नुवन्ति, न त्वकृतसुकृता इत्यर्थः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥६८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– वाक्यकरणादिसदाचारैः पितुः प्रीतिकारकः पुत्रः, पत्युः हिताचरणतत्परा भार्या, यदनर्थसंकटे संपदि च तुल्यवृत्तिः सखा, एतत्सत्पुत्रादित्रितयं महता पुण्येन जनैर्लभन्ते ॥६८॥

हिन्दी :– जो सदाचरण से पिता को प्रसन्न करे वह पुत्र, जो स्वामी का हित ही चाहे वह भार्या और जो सुख दुःख दोनों में समान व्यवहार करे वह मित्र, ये तीन पदार्थ जगत् में पुण्यकर्मा ही पाते हैं ॥६८॥

English Translation :– He who satisfies his parents with his good action is a son. She, who always wishes good to her husband is a wife. He who acts similarly both in prosperity as well as in adversity, is friend. These

three things, in this world are given to those who have done good deeds. (68)

एको देवः केशवो वा शिवो वा,
ह्येकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वासः पत्तने वा वने वा,
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ।।६९।।

अन्वय : (Prose Order)– एकः देवः केशवः वा शिवः वा, एकं मित्रं भूपतिः वा यतिः वा, एकः वासः पत्तने वा वने वा, एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

नीतिपथ :– चत्वारि ग्राह्यवस्तूनि विकल्पेनाह– **एक इति** । जगत्येकः केवलो देवो ध्यातुं योग्यो नान्यः केशवो विष्णुर्वा शिवो वा महेश्वरो वा । एकं केवलं मित्रं भूपतिर्वा भुवः पृथिव्याः पतिः राजा वा । यतिः सन्यासी वा कर्तव्यम् । राज्ञि मित्रे सांसारिकसर्वसुखसम्भवः यतौ च सुहृदि कृते वैराग्योपलब्धिः । एकः केवलो वासः पत्तने वा नगरे वा वने वा निर्जने कान्तारे वा । पत्तने सर्वैश्वर्यसुखभोगावाप्तिर्वने तु ब्रह्मध्यानयोग्यता । एका केवला नारी सुन्दरी रूपलावण्योपेता नारी वा दरी वा गुहा वा कर्तव्या । शालिनीवृत्तम् ॥६९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– केशवशिवयोर्मध्ये यथेच्छम् एको देवः आश्रयणीयः, एकमेव मित्रं कर्तव्यं नृपः वा योगी वा, एकः वासः निधातव्यः नगरे वा अरण्ये वा । एका स्त्री कर्त्तव्या कामिनी वा कन्दरा वा ॥६९॥

हिन्दी :– संसार में (मनुष्य को) विष्णु या शंकर इन दोनों में एक ही देवता का ध्यान करना चाहिये । राजा अथवा सन्यासी में से किसी एक ही को मित्र बनाना चाहिये । वासयोग्य स्थान एक ही होना चाहिये नगर अथवा वन । तथा एक ही स्त्री होना चाहिये–सुन्दरी अथवा गुफा ॥६९॥

English Translation– There is only one God either Vishnu or Mahadeva. There is only one friend either a king or an ascetic. There is only one place fit for residence either a city or a forest, only one wife, either a beautiful young woman or the cave of a mountain. (69)

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः
स्वार्थन्सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः,
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ।।७०।।

अन्वय : (Prose Order)– नम्रत्वेन उन्नमन्तः, परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः, परार्थे विततपृथुतरारम्भयत्नाः स्वार्थान् सम्पादयन्तः आक्षेपरूक्षाक्षर-मुखरमुखान् दुर्जनान् क्षान्त्या एव दूषयन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः सन्तः कस्य न अभ्यर्चनीयाः ? ।।७०।।

नीतिपथ :– सतां विचित्रामाचरणचर्यामाह– **नम्रत्वेनेति** । नम्रत्वेन विनयेनोन्नमन्त उच्चीभवन्तः । परगुणकथनैः परेषामन्येषां गुणानां सौजन्यादिसत्प्रवृत्तीनां कथनैः प्रकाशनैः स्वान् निजान् गुणान् ख्यापयन्तः प्रकटयन्तः । परार्थे परेषामन्येषामर्थे प्रयोजने विततपृथुतरारम्भयत्नाः विततौ विस्तृतौ पृथुतरौ चारम्भयत्नौ प्रारम्भोत्साहौ च येषां ते तथोक्ताः सन्त एव स्वार्थान् निजप्रयोजनानि सम्पादयन्तः साधयन्तः । आक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् आक्षेपेण निन्दया रूक्षाणि परुषाणि तानि चामून्यक्षराणि तैः मुखराणि सशब्दानि मुखानि लपनानि येषान्तान् । परनिन्दात्मकतया परुषैर्वर्णैः वाचालमुखान् । दुर्जनान् दुष्टान् क्षान्त्यैव स्वीयालौकिकसहिष्णुतागुणेनैव दूषयन्तस्तानधः कुर्वन्तोऽतः साश्चर्यचर्या आश्चर्येण सह विद्यमानाः साश्चर्याः । तथाभूताश्चर्या येषान्ते । विचित्राचरणशैलीका जगति संसारे बहुमता बहूनां मताः सर्वादरणीयाः इमे इति सर्वैः प्रशंसिताः सन्तः शिष्टाः कस्य जनस्य नाभ्यर्चनीयः पूज्याः अपितु सर्वस्यैव पूज्या इत्यर्थः । स्रग्धरावृत्तम्, म्रभ्नैर्यानां त्रयेणत्रिमुनि यतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम्' इति लक्षणात् ।।७०।।

सरलसंस्कृतार्थ :– ये सज्जनाः प्रह्वत्वेनाभ्युदयमवाप्ताः, ये परेषां सद्गुणवर्णन-व्याजेन स्वकीयगुणप्रख्याने दक्षाः, ये च परकार्यसाधनपुरस्कारेणैवात्मीयकार्य-साधनतत्पराः, ये स्वकीयालौकिकसहिष्णुतागुणेनैव निन्दापरान् खलान् सन्तापयितुं प्रभवन्ति, एवं विधा अत्यन्ताश्चर्यकरचरित्राः सन्तः सत्पुरुषा लोके बहुमानिताः सन्तः कस्य वा पुंसो न पूजनीया, अपितु सर्वदा ते सत्कार्या भवन्तीति भावः ।।७०।।

हिन्दी :– विनम्रता से अभ्युन्नति करनेवाले, परगुणों के कथन से ही अपने गुणों को प्रकाशित करनेवाले, दूसरों के बडे कार्यों की सिद्धि के लिए उद्योग करते

हुए ही निजार्थ की सिद्धि करनेवाले, कटुभाषी दुष्टों का क्षमा द्वारा ही तिरस्कार करने वाले, आश्चर्यजनक आचरणशैली वाले लोकमान्य सज्जन इस संसार में किसके लिए माननीय नहीं होते ? अर्थात् सभी के वन्दनीय होते हैं ॥७०॥

English Translation :– Who dose not adore the noble persons whose actions are wonderful, and who are greatly revered by the world. These persons become high by their modesty and give a publicity to their merits by describing those of others. They accomplish their desires because they work hard to bring about the gain and objects of others. Their mode of acting is, again, wonderful because they throw down the wicked whose tongues are harsh and abusive. (70)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१॥

अन्वय : (Prose Order)– तरवः फलोद्गमैः नम्राः भवन्ति, घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः भवन्ति, सत्पुरुषाः समृद्धिभिरनुद्धता (भवन्ति) एष परोपकारिणां स्वभाव एव ॥७१॥

नीतिपथ :– परोपकारिणां प्रकृतिं वर्णयति– **भवन्तीति** । तरवः रसालादिवृक्षाः फलोद्गमैः फलानामुद्गमा उदयास्तैः फलभारैर्नम्रा अवनता भवन्ति । 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपः पादपस्तरुः' **इत्यमरः** । घनाः मेघा नवाम्बुभिर्नवानि नूतनानि च तान्यम्बूनि जलानि तैः, नूतनोदकैरुपलक्षिता सन्तो दूरविलम्बिनः दूरं विलम्बन्ते इति, सर्वत्र प्रवर्षणार्थं दूरं यावदधो लम्बायमानाः भवन्ति । सत्पुरुषाः सज्जनाः समृद्धिभिरुपलक्षिता अप्यनुद्धता अनुछृङ्खला भवन्ति । किन्तेनायातमित्याह– परोपकारिणां परानन्यानुपकुर्वन्ति सुखं ददतीति तेषाम्, अन्योपकाररतानां सज्जनानां एषोऽयं वर्णितलक्षणः स्वभाव एव प्रकृतिमात्रम् । अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । वंशस्थवृत्तम् । 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति तल्लक्षणात् ॥७१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– तरवः फलभारैः अवनता भवन्ति, मेघा नूतनोदकैरुपलक्षिताः

सन्तो दूरं यावदधो लम्बायमाना भवन्ति, सत्पुरुषा: सम्पत्तिविशेषै: तीक्ष्णस्वभावा न भवन्ति, नम्रत्वादिव्यवहार: परहिताचरणतत्पराणां निसर्गसिद्ध एव ॥७१॥

हिन्दी :– फलों के आने से वृक्ष झुक जाते हैं, बरसनेवाले नूतनजल से भरे मेघ दूर तक झुक जाते हैं तथा सत्पुरुष सम्पत्तियों में उद्धत नहीं होते हैं। क्योंकि परोपकार करने वालों का यह स्वभाव ही होता है ॥७१॥

English Translation :– Trees bend down with bearing fruits. Clouds hang heavily in the sky, owing to the burden of the fresh waters. Good persons are modest in the days of prosperity, such is only the nature of those who do good to others. (71)

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन,
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां[1],
परोपकारैर्न तु[2] चन्दनेन ॥७२॥

अन्वय : (Prose Order)– श्रोतं श्रुतेन एव विभाति, कुण्डलेन तु न (विभाति) पाणि: दानेन (विभाति) न तु कङ्कणेन, करुणापराणां काय: परोपकारै: (विभाति) तु चन्दनेन न (विभाति) ॥७२॥

नीतिपथ :– अथैषां मुख्यमण्डनसम्पत्तिमाह– **श्रोत्रमिति**। श्रोत्रं कर्ण:, 'कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रम्' **इत्यमरः**। श्रुतेन शास्त्रश्रवणेनैव विभाति प्रकाशते, कुण्डलेन कर्णावतंसेन न तु विभाति। पाणिर्हस्तो दानेन सत्पात्रत्यागेन विभाति, कङ्कणेन कनकवलयेन तु न विभाति। करुणापराणां दयारतानां जनानां काय: देह: परोपकारै: परेषामुपकारा: तै:, अन्यहितसाधनै: विभाति शोभते न तु चन्दनेन प्रत्यङ्गमनुलिप्तेन मलयजेन। महात्मनां श्रवणादिकमेव निसर्गसिद्धं मण्डनं न त्वन्यत्। अहो कियल्लोकोत्तरं सतां भूषणमिति भाव:। उपजातिर्वृत्तम् ॥७२॥

सरलसंस्कृतार्थ :– परोपकारिणां कर्ण: वेदशास्त्रादिश्रणेनैव प्रकाशते कर्णावतंसेन न तुविभाति। तेषां हस्त: सत्पात्रत्यागेन विभाति कनकवलयेन तु न विभाति।

---

१. 'करूणाकुलानाम्' इत्यपि पाठ:।
२. 'परोपकारेण न' इत्यपि पाठ:।

दयालूनां देहः परेषां हिताचरणेन विभाति न तु प्रत्यङ्गमनुलिप्तेन मलयजेन ॥७२॥

हिन्दी :– कानों की शोभा वेदशास्त्रों के श्रवण से होती है, सुवर्णकुण्डल से नहीं। हाथ सत्पात्र को दान देने से शोभित होते हैं, कङ्कण पहनने से नहीं और दयालु सज्जनों का शरीर दूसरे के हिताचरण से ही शोभित होता है चन्दनादि के लेप से नहीं ॥७२॥

English Translation :– It is hearing to the shastras which beautifies the ear and not ear-rings. The hand is embellished by charity and not by bracelets. The beneficent are glorified as they do good to others and not by painting sandal wood on their bodies. (72)

पापान्निवारयति, योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति, गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः[१] ॥७३॥

अन्वय : (Prose Order)– पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गूह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्गतं च न जहाति, काले ददाति, सन्तः इदं सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्ति ॥७३॥

नीतिपथ :– अथ सन्मित्रलक्षणमाह– **पापादिति**। यः पापादघान्निवारयति रुणद्धि। धर्मोपदेशेन दुष्कर्मप्रवृत्तेर्विरमयतीत्यर्थः। हिताय कल्याणाय योजयते नियुङ्क्ते 'कुरुकर्मैतत्ते कल्याणाय स्यादित्याख्याय सन्मार्गमारोपयति। यद्वा श्रेयः संग्रहार्थं प्रोत्साहयतीत्यर्थः। गुह्यं गोपनीयं निगूहति निःशेषेण गोपयति। न कुत्रापि प्रकटयतीत्यर्थः। गुणान् सौजन्यादीन् सद्भावान् कीर्तिजनकान् प्रकटीकरोति प्रथयति जनसविधे वर्णयति। न तु निगूहतीत्यर्थः। आपद्गतमापदं गतं प्राप्तदुःखञ्च, संकटस्थमपि मित्रं न जहाति न त्यजति। काले अनुकूले समये धनसाहाय्यकमारचयति ? सन्तो लक्ष्यलक्षणचतुराः सूरयः इदं पूर्वोक्तं सन्मित्रलक्षणं सच्चादौ मित्रं तस्य लक्षणमुत्तमसुहृदः स्वरुपं प्रवदन्ति कथयन्ति। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥७३॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यच्च मित्रं हानिकरात् कर्मणो निवार्य श्रेयस्करे कर्मणि प्रवर्तयति, तस्य दुर्वृत्तं संगोप्य सौशील्यादिगुणान् प्रख्यापयति, विपत्तौ च तस्य

---

१. 'धीराः' इति पाठान्तरम्।

साहाय्यं करोति, यदा-कदा च व्यसनादिसमये वाञ्छितं दिशति तदेव सन्मित्रम्, इति सत्पुरुषैः निश्चितम् ॥७३॥

हिन्दी :– सत्पुरुष अच्छे मित्र का यही लक्षण कहते हैं कि वह मित्र को निन्दित कार्यों से रोकता है, हितावह कार्यों में लगाता है, संगोप्य बातों को गुप्त रखता है, गुणों का अभिवर्णन करता है, आपत्ति काल में भी साथ नहीं छोडता, आवश्यक होने पर सहायता प्रदान करता है ॥७३॥

English Translation :– The learned men have thus defined a true friend. They say that such a friend checks one from sin and induces him to do good, hides a secret and gives publicity to his (friends) virtues. He does not give up his friend when he is in distress and gives help at the time of need. (73)

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति[1],
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ।।७४।।

अन्वय : (Prose Order)– नाभ्यर्थितः दिनकरः पद्माकरं विकचीकरोति । (नाभ्यर्थितः) चन्द्रः कैरवचक्रवालं विकासयति । (नाभ्यर्थितः) जलधरोऽपि जलं ददाति, सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः (भवन्ति) ॥७४॥

नीतिपथ :– पद्माकरमिति । नाभ्यर्थितः अप्रार्थितः सन्, दिनकरः दिनं दिवसं करोति सः, पद्माकरं पद्मवनं विकचीकरोति समुन्मीलयति, 'प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोच-विकचस्फुटाः । फुल्लश्चैते विकसिते' **इत्यमरः** । तथा चन्द्रो विधुः कैरवचक्रवालं कैरवाणां कुमुदानां चक्रवालं मण्डलं विकासयति व्याकोचयति, 'सितेकुमुदकैरवौ' **इत्यमरः** । जलधरः धरतीति धरः, जलस्य धरः जलधरः जलं चातकाय ददाति प्रयच्छति । सन्तः सुजनाः परहिते परेषामन्येषां हिते कल्याणे स्वयम् अप्रेरिताः केनापि सुकृताभियोगाः सम्यग्रचितोऽभियोगा उद्योगः प्रयासो वा यैस्तैः, कृतप्रवृत्तयः भवन्तीति शेषः । सामान्येन विशेषसमर्थनरुपोऽर्थान्तरन्यासः, वसन्ततिलका वृत्तम् ॥७४॥

---

१. 'विकचं करोति' इत्यपि पाठः।

सरलसंस्कृतार्थ :– कमलवनविकासार्थं दिनकरस्य, कुमुदवनविकासार्थं च चन्द्रस्य, जलवर्षणार्थं च जलधरस्य न कोऽपि प्रार्थनां करोति, ते स्वयमेव स्वं कार्यं मत्वा तत्तत् कुर्वन्ति, एवमेव सत्पुरुषाः स्वभावत एव परहितकर्म कुर्वन्ति, न तु तदर्थं तान् कश्चित् प्रेरयति ॥७४॥

हिन्दी :– विना याचना किए ही सूर्य कमलसमूह को विकसित करता है, विना याचना किए ही चन्द्र कुमुद-समूह को विकसित करता हैं तथा विना अनुनय-विनय किए ही मेघ जलवर्षण करते हैं इस प्रकार सत्पुरुष भी स्वयं ही परोपकार में उद्योगरत रहते हैं ॥७४॥

English Translation :– The sun opens out a treasure of lotuses and the moon sets a group of the night-lotuses to bloom. The clouds pour forth water even unrequested for. The good-natured exert themselves for the benefit of others, of their own accord. (74)

एके[१] सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परिहतं स्वार्थाय निघ्ननन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमेहे ।।७५।।

अन्वय : (Prose Order)– ये स्वार्थं परित्यज्य परार्थघटकाः ते एके सत्पुरुषाः, ये स्वार्थाऽविरोधेन परार्थम् उद्यमभृतः ते तु सामान्याः, ये स्वार्थाय परहितं निघ्नन्ति तेऽमी मानुषराक्षसाः, ये निरर्थकं परहितं निघ्नन्ति ते के न जानीम-हे ॥७५॥

नीतिपथ : एके इति । ये पुमांसः स्वार्थं स्वेषामर्थं निजाभीष्टं परित्यज्य परित्यक्त्वा परार्थघटकाः परस्यान्यस्यार्थं प्रयोजनं घटयन्ति सम्पादयन्तीति तथोक्ताः एके केचित्तु जगति सत्पुरुषाः सन्तश्च ते पुरुषाः । ये तु जनाः स्वार्थाविरोधेन, स्वार्थेनाविरोधस्तेन, निजकार्याविघातेन, स्वार्थनिर्वाहतत्परत्वेनैवेत्यर्थः। परार्थमुद्यमभृतः परार्थं परप्रयोजननिर्वाहार्थमुद्यमभृत उद्योगभाजस्ते सामान्याः साधारणाः मध्यमपुरुषा इत्यर्थः। ये स्वार्थाय स्वेष्टसाधनाय परहितमन्यस्य कार्यं निघ्नन्ति विनाशयन्ति तेऽमी मानुषराक्षसा मनुष्यरूपधारिणो दानवा इत्यर्थः । ये तु जनाः निरर्थकं निर्गतः अर्थो

१. 'एते' इति पाठान्तरम्।

यस्मादिति, व्यर्थमेव परहितमन्यकार्यं निघ्नन्ति नाशयन्ति ते के इति व कवयितारो न जानीमहे। तेभ्यः किमुपयुक्तं नाम स्यादिति वक्तुं नास्मज्जिह्वा प्रभवतीत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥७५॥

सरलसंस्कृतार्थ :– ये तु स्वार्थं त्यक्त्वा परार्थं साधयन्ति ते सज्जनाः, ये स्वार्थाविरोधन परार्थं कुर्वन्ति ते साधारणाः, ये च केवलं स्वार्थपराः सन्तः परार्थं विध्वंसयन्ति ते राक्षसप्रकृतयोऽधम-कोटिभाजो उच्यन्ते। किन्तु ये निरर्थकं परहिते बाधका भवन्ति ते कथंभूता इति न वयं जानीमः ॥७५॥

हिन्दी :– इस संसार में कुछ ऐसे सज्जन व्यक्ति होते हैं जो अपने स्वार्थ का त्याग करके भी परोपकार करते हैं। कुछ व्यक्ति साधारण होते हैं जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करते हुए दूसरों के अभीष्ट की सिद्धि करते हैं। कुछ नराधम व्यक्ति हैं, जो अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु दूसरों के हित का नाश करते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति जो परहित का निष्कारण हनन करते हैं, वे कौन हैं, यह हम नहीं जानते ॥७५॥

English Translation :– There are noble men who sacrifice their own interest for the sake of that of others. Again, there are those who strive to do good to others so long as their own interest does not collide with that of others. There are those too, who spoil other's business for their selfish purpose, such are apparently men but demons in reality. But we know not how to name those who ruin other's purpose without serving any of themselves. (75)

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षी[1]रोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुत :।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तुं मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति, सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

अन्वय : (Prose Order)– पुरा क्षीरेण हि आत्मगतोदकाय तेऽखिला गुणाः दत्ताः, क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः, तत्तु पुनः मित्रापदं

---

१. 'क्षीरे ताप' इति पाठान्तरम्।

दृष्ट्वा पावकं गन्तुमुन्मनोऽभवत् । तेन जलेन पुनः युक्तं (सत्) शाम्यति सतां तु मैत्री ईदृशी ॥७६॥

नीतिपथ : क्षीरेणेति । पुरा प्रथमम्, क्षीरेण दुग्धेन आत्मगतोदकाय आत्मानमुपगतं प्राप्तं यदुदकं जलं तस्मै, स्वात्मनि मिश्रिताय जलायेत्यर्थः । ते ये स्वस्मिन्नासन् मधुरिमाश्वेतिमादयस्तेऽखिलाः सर्वे गुणाः धर्मा हि नूनं दत्ता समर्पिताः । क्षीरोत्तापम् अग्नौ निक्षिप्तस्य दुग्धस्योत्तापमुद्बलनमग्निकृतमवेक्ष्य दृष्ट्वा क्षीरमिश्रितेन पयसा जलेन । 'पयः क्षीरं पयोऽम्बु च' **इत्यमरः** । स्वात्मा निजं रूपं कृशानावग्नौ हुतो दत्तम् । येनाहमियतीं पदवीमधिरोपितस्तन्मित्रमापद्गतं नाहन्त्यक्ष्यामीत्याशयेनैव । तत् अग्निना संतप्तं क्षीरं पुनः मित्रापदं मित्रस्य जलस्यापदं विनाशरूपं दुःखन्दृष्ट्वा पावकं वह्निं गन्तुमुन्मन उत्कण्ठितमभवदभूत् । जलं नष्टं वीक्ष्य दुग्धमपि मित्रविरहानलसन्तप्तमिव वह्निं प्रयातुं प्रक्रमते । तदनन्तरं तेन जलेन युक्तं सिक्तं सत् शाम्यति प्रशान्तं भवति । तथा हि सतां मैत्री ईदृशी एतादृशी भवतीति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥७६॥

सरलसंस्कृतार्थ :– क्षीरेण जले मिश्रिते सति प्रथमं जलं क्षीरस्य निजमाधुर्य-धावल्यादिन् गुणान् आदाय तन्मयमेव भवति । ततश्च दुग्धस्य निजगुणप्रदानरूपमुपकारं स्मृत्वा तज्जलम् अग्नौ निक्षिप्तस्य दुग्धस्य सन्तापमवेक्ष्य स्वयमग्नौ शुष्यति । ततस्तत्क्षीरमपि जलस्यसंशोषरूपां विपत्तिं दृष्ट्वा वाह्निपतनमाकांक्षति । तदनन्तरं जलेन युक्तं प्रशाम्यति । एवमेव सज्जनानां मैत्री परस्परव्यसनासहनशीला भवति ॥७६॥

हिन्दी :– दूध ने प्रथम आत्मगत जल को अपने सभी गुण प्रदान कर दिये । तत्पश्चात् (आग पर दूध को रखने पर) दूध को जलता हुआ देख उस जल ने अपने आप को अग्नि में झोंक दिया, अपने मित्र (जल का) की आपत्ति को देखकर दूध भी अग्नि में जाने के लिए व्याकुल हो उठा और अन्त में जल से मिलकर ही शान्त हुआ । वस्तुतः सज्जनों की मित्रता ऐसी ही होती है ॥७६॥

English Translation :– At first, milk gave all its well known properties to water, when mixed with it. The water too, seeing its friend milk boiling, threw itself on the fire. There seeing its friend in danger, the milk boiled up and became anxious to follow the suit. They gave water back to it and thus it was calmed. Such is friendship of the good.

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ।
इतोऽपि वडवानलः सहं समस्तसंवर्तकै-
रहो! विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ।।७७।।

अन्वय : (Prose Order)– इतः केशवः स्वपिति, इतस्तदीयद्विषां कुलम् । इतश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते । इतः समस्तसंवर्त्तकैः सह वडवानलः, अहो सिन्धोर्वपुः विततमूर्जितं भरसहञ्च ।।७७।।

नीतिपथ :– महतां महामहिमानमाह–**इतः इति** । इत एकस्मिन् कोणे केशवो दामोदरः 'दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः' **इत्यमरः** । स्वपिति शेते । इतोऽस्मिन्प्रदेशे तदीयद्विषां कुलं तस्येमे तदीयाः तदीयाश्च ते द्विषस्तेषाम्, विष्णुशत्रूणां दैत्यानामिति यावत् । कुलं समूहः तिष्ठतीति शेषः । इतश्चान्यस्मिन्प्रदेशे शरणार्थिनां रक्षणाभिलाषिणाम् । शिखरिणां मैनाकादिपर्वतानां गणाश्च समूहाः शेरते स्वपन्ति । इतस्तस्मादप्यन्यप्रदेशे समस्तसंवर्तकैः समस्ताश्च ते संवर्त्तकास्तैरखिल-प्रलयकालिकैः मेघैः सह साकं बडवानलो जलीयोऽग्निः शेते । अहो इत्याश्चर्येऽव्य-यन्तदेवाह । सिन्धोः सागरस्य वपुः शरीरं विततं विस्तृतमूर्जितं बलवद् भरसहञ्च भारोद्वहनक्षमं च । अधिकालङ्कारः । पृथ्वीवृत्तम् ।।७७।।

सरलसंस्कृतार्थ :– रक्षाभिलाषिणां शरणागतनामाश्रयदातारो महापुरुषाः महामहिमशालिनो भवन्ति यथा समुद्रः, कियद्भारोद्वहनक्षमं विस्तृतं बलवच्च तद्वपुरस्ति यदेकस्मिन्प्रदेशे विष्णुः स्वपिति, अन्यस्मिन् प्रदेशे दैत्यकुलम् । अन्यत्र च मैनाकादि-पर्वतास्तिष्ठन्ति तथा एकत्रं प्रलयकालप्रवर्षिमेघैः सह वडवानलोऽपि वसति ।।७७।।

हिन्दी :– अहो! समुद्र का शरीर कितना विशाल, बलवान् और भार उठाने में समर्थ है, जिसमें एक ओर साक्षात् भगवान् विष्णु शयन करते हैं, तो दूसरी ओर उनके शत्रु राक्षसों का कुल सोता है । एक ओर शरणाभिलाषी मैनाकादि पहाड़ों का समूह है तो दूसरी ओर प्रलयकालिक मेघों के साथ वडवाग्नि रहता है ।।७७।।

English Translation :– What a spacious, strong and stout body the ocean possesses? Here lies Vishnu, there his enemises. Here you can see the groups of the mountains seeking shelter (from the bolt of Indra), and here lies Vadavagni along with all the destructive fires that

destory the universe at the time of world destruction.(77)

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय[१] स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय, दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ।।७८।।

अन्वय : (Prose Order)– हे मनुष्य ! तृष्णां छिन्धि, क्षमां भज, मदं जहि, पापे रतिं मा कृथाः, सत्यं ब्रूहि, साधुपदवीमनुयाहि, विद्वज्जनं सेवस्व, मान्यान्मानय, विद्विषोऽप्यनुनय, स्वान् गुणान् प्रख्यापय, कीर्तिं पालय, दुःखिते दयां कुरु, एतत् सतां लक्षणम् (अस्ति) ॥७८॥

नीतिपथ :– सतां लक्षणमाह–**तृष्णामिति**। तृष्णां लोभं छिन्धि विदारय। क्षमां तितिक्षां भज सेवस्व। मदं गर्वं जहि विमुञ्च। पापे हिंसादिपातके रतिं प्रीतिं मा कुरु मा कार्षीः। सत्यं तथ्यं ब्रूहि वद। साधुपदवीं साध्नुवन्ति परकार्यमिति साधवस्तेषां पदवीं मार्गमनुयाह्यनुसर। विद्वज्जनं पण्डितमण्डलं सेवस्व शुश्रूषस्व। मान्यान्पूज्यान्मानय यथार्हं पूजय। विद्विषोऽपि शत्रूनपि स्वानुकूलान् विधेहि। स्वान्गुणान् प्रख्यापय प्रसिद्धान् कुरु। अप्रसिद्धीकृतेषु गुणेषु न कोऽपि तान् ज्ञास्यति। कीर्तिं यशः पालय रक्ष। दुःखिते पीडिते दयां कुरु कृपां विधेहि। एतत्तृष्णाछेदनादिकं सर्वं सतां सज्जनानां लक्षणं चिह्नम्। इमानि चिह्नानि यत्र दृश्येरन् तत्रावश्यमयं सज्जन इति वेद्यम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥७८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– हे मानव ! तृष्णां विदारय, सहनशक्तिं सेवस्व, विद्याधनबलजनितं दर्पं विनाशय, पापकर्माचरणे प्रीतिं मा कुरु, यथार्थमेव वचनं वद, सन्मार्गमनुसर, पूज्यान् यथार्हं पूजय, शत्रूनपि अनुनय, विनयम्प्रकटय, कीर्तिनिर्वहणे प्रयत्नं कुरु', सजातदुःखेषुभूतेषु दयां कुरु यतो हि– एतत्सर्वं तृष्णाच्छेदादिकं सज्जनानां चेष्टितं। यदि सौजन्ययशःकामी तदैवं प्रवर्तस्व इत्यर्थः ॥७८॥

हिन्दी :– (हे मानव !) लोभ छोडो, सहनशक्ति से काम लो, अहंकार को दूर करो, पापकर्म में अभिरुचि मत रखो, सत्य बोलो, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो, पूज्यजनों का सम्मान करो, शत्रुओं को भी अनुकूल करो, नम्रता दिखाओ,

---

१. 'प्रख्यापयप्रश्रयं' इति पाठान्तरम्।

कीर्ति का रक्षण करो और दुःखी जनों पर कृपा करो, क्योंकि सज्जनों का ऐसा ही व्यवहार है ॥७८॥

English Translation :– Destory greed and foster forgiveness. Do not love Sin. Speak the truth. Follow the path of the good. Serve the learned. Worship those who deserve. Also reconcile your enemies. Show your virtues and protect the good name. Have pity on the distressed. This is the definition of the good. (78)

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥७९॥

अन्वय : (Prose Order)– मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः उपकारश्रेणिभिः त्रिभुवनं प्रीणयन्तः, परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि नित्यं विकसन्तः सन्तः कियन्तः सन्ति ॥७९॥

नीतिपथ :– विरला एव सज्जना जगतीत्याह–**मनसीति**। मनसि हृदये वचसि वाण्यां काये शरीरे च पूण्यपीयूषपूर्णाः पुण्यमेव सुकृतरूपं पीयूषममृतन्तेन संभृताः, 'पीयूषममृतं सुधा' **इत्यमरः**। कायवाङ्मनोभिः पुण्यमेव कुर्वन्तः। उपकारश्रेणिभिरुपकाराणामुपकृतीनां परहितानां श्रेणिभिः पुञ्जैः त्रिभुवनन्त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् प्रीणयन्तः प्रसादयन्तः। परगुणपरमाणून् परेषामत्यल्प-गुणानपीत्यर्थः। पर्वतीकृत्य अपर्वतान् पर्वतान् कृत्वा इति पर्वतीकृत्य गिरीनिव महत्तरान् कृत्वा। निजहृदि। निजे हृदि स्वकीयमनसीत्यर्थः। नित्यं सदैव। विकसन्तः संतुष्यन्तः सन्तः सत्पुरुषाः कियन्तः कतिपये। विरला एवेत्यर्थः सन्ति। न तु सान्द्राः, एतादृशगुणसम्पत्तेरसाधारण्यादिति भावः। मालिनीवृत्तम् ॥७९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– मनसा वाचा कर्मणा च त्रैलोक्यप्राणिनामुपकारकारकारिणः, परेषामत्यल्पगुणान् पर्वतीकृत्य हृदि धारयन्तः सज्जनाः जगति विरला एव सन्ति ॥७९॥

हिन्दी :– मन, वाणी और शरीर में पुण्यरूप अमृत से परिपूर्ण, तीनों लोकों को उपकारों से तृप्त करने वाले तथा दूसरों के गुणरूप परमाणुओं को पर्वत-सा

बनाकर हृदय में नित्य प्रसन्न होने वाले सज्जन पुरुष संसार में कितने है ? अर्थात् विरले ही हैं ॥७९॥

English Translation :- How few are the good people whose minds, bodies and speeches are full of nector of good actions and who have done good to the three flod world, who always find pleasure in elevating the lowly atoms of others virtues to a high pitch like that of a mountain. (79)

किं तेन हेमगिरिणा, रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥८०॥

अन्वय : (Prose Order)– तेन हिमगिरिणा रजताद्रिणा वा किं, यत्र च आश्रिताः तरवः ते तरवः एव । (वयन्तु) मलयमेव (बहु) मन्यामहे । यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजाः अपि चन्दनाः स्युः ॥८०॥

नीतिपथ :– गुणवन्तस्त एव येऽन्यानप्युपकुर्वन्ति न तु स्वार्थमात्रपरायणा इत्याह-**किमिति** तेन हेमगिरिणा हेमप्रधानोगिरिर्हेमगिरिस्तेन, हेम्नो वा गिरिणा । सुमेरुपर्वतेन । रजताद्रिणा कैलासपर्वतेन वा किं फलं प्राप्यं न किमपीत्यर्थः । यत्र च यस्मिन् स्थले आश्रिताः संस्थिताः तरवः पादपाः त एव पूर्ववदेव तरवः वृक्षाः सन्ति । तत्र न किमपि परिवर्तनं जातमित्यर्थः । वयन्तु मलयमेवैतन्नामकं दक्षिणस्यां दिशि स्थितं शैलविशेषमेव मन्यामह आद्रियामहे यदाश्रयेण यस्याश्रयस्तेन यत्संपर्केण कङ्कोलनिम्बाश्च कुटजाश्च एतन्नामका वृक्षविशेषा अपि चन्दनाः चन्दनतरुसदृशाः सुगन्धगुणावाप्त्या मलयजतां प्राप्नुयुः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥८०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– सुमेरुपर्वतेन कैलासपर्वतेन वा को लाभः यदाश्रितास्तरवः सामान्यवृक्षा एव सन्ति । स तु बहुमानपात्रं येन स्वाश्रिता निर्गुणा अपि गुणवन्तो विहिताः । वयन्तु मलयाचलमेव आद्रियामहे यस्याश्रिताः कङ्कोलनिम्बकुटजाः वृक्षाः चन्दनगन्धिनो भवन्ति ॥८०॥

हिन्दी :– उस सुवर्ण अथवा चाँदी के पर्वत से क्या लाभ जिसका आश्रय लिये हुए वृक्ष वैसे ही वृक्ष रह जाते हैं। हम उस मलयाचल को ही अधिक महनीय

मानते हैं जिसका आश्रय लेने से कङ्कोल (शीतलचीनी) नीम और कुटज के वृक्ष भी चन्दन (सुगन्ध युक्त) हो जाते हैं ॥८०॥

English Translation :– What is the good of those mountains of gold and silver the dependent trees of which remain the same as they were. Malaya is great indeed for with the help of which even kankole, Nime and kutaja trees are transmuted into sandal ones. (80)

[१]रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥८१॥

अन्वय : (Prose Order)– देवाः महार्हैः रत्नैर्न तुतुषुः, भीमविषेण भीतिं न भेजिरे । सुधां विना विरामं न प्रययुः । धीरा निश्चितार्थात् न विरमन्ति ॥८१॥

नीतिपथ :– रत्नैरिति । देवाः सुराः महार्हैरर्हन्तीत्यर्हा महान्तश्च तेऽर्हा इति । महार्हैः महार्घैरित्यर्थः । रत्नैः हीरकादिभिः न तुतुषुः सन्तुष्टा न बभूवुः । अमृतमन्विष्यद्भिरस्माभिः रत्नानि महार्घाणि प्राप्तान्येव तत्किमस्माकं प्रयत्नेनाधुनेति मत्वा श्रमान्न विरेमुः । भीमविषेण भीमश्च तद्विषन्तेन, भयङ्करेण हालाहलेन भीतिं भयं न भेजिरे लेभिरे । इदन्नो मारयिष्यतीति शङ्कान्न चक्रिरे । किन्ततस्तेऽकुर्वन्नित्याह-सुधाममृतं विनान्तरामृतमलब्ध्वा विरामं स्वकार्याद्विरतिं न प्रययुः जग्मुः । यावदमृतं न लब्धन्तावद् विश्रान्तिन्न गताः । अर्थान्तरन्यासेन तात्पर्यं विवृणोति-धीराः मनस्विनः निश्चितार्थात् निश्चितश्चासावर्थस्तस्मात् प्रतिज्ञातविषयात् न विरमन्ति न विश्राम्यन्ति । उपजातिः वृत्तम् ॥८१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– अमराः क्षीरार्णवस्य बहुमूल्यैः रत्नैः तुष्टिं न प्रापुः । न च गरलेन बिभ्युः । किन्तु ते यावत्सुधां न लेभिरे तावन्न स्वोद्योगेन विरताः । धीराणां स्वभावोऽयं यत्ते प्रारब्धस्य कार्यस्य समाप्तिं यावन्न मुह्यन्ति ॥८१॥

हिन्दी :– (समुद्र मंथन के अवसर पर) देवगण न बहुमूल्य रत्नों को पाकर संतुष्ट हुए और न भयंकर विष से भयभीत हुए, किन्तु अमृत बिना प्राप्त किये समुद्रमंथन से नहीं रुके । (क्योंकि) धीर लोग संकल्पित वस्तु की प्राप्ति के विना कभी अपने कार्य से विरत नहीं होते हैं ॥८१॥

---

१. 'रत्नैर्महाब्धेः' इति पाठान्तरम् ।

English Translation :– The gods were not satisfied with valuable jewels nor were they terrified with dreadful poision. They did not cease working till they obtained nector. The patient do not stop unless they gain the object of their desires. (81)

क्वचिद्भूमौ[१] शय्या, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः,
क्वचिच्छाकाहारी[२], क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ।।८२।।

अन्वय : (Prose Order)– क्वचित् भूमौशय्या, क्वचित् अपि च पर्यङ्ककशयनः, क्वचित् शाकाहारीः, क्वचित् अपि च शाल्योदनरुचिः, क्वचित् कन्थाधारी, क्वचित् अपि च दिव्याम्बरधरः कार्यार्थी मनस्वी दुःख सुखं च न गणयति ।।८२।।

नीतिपथ :– पूर्वोक्तमेवार्थम्भङ्ग्यन्तरेणाह– **क्वचिदिति** । क्वचिद् कदाचिद् कुत्रचिद् वा काले देशे पृथ्वीशय्यः पृथ्वी शय्या यस्य स तथोक्तः, पृथ्वीशायी कठिनतरस्थण्डिलशयनोऽपीत्यर्थः । क्वचिदपि स्थितिविशेषे पर्यङ्कशयनं पर्यङ्के पल्यङ्के शयनं स्वापो यस्य स तथोक्तः । 'मंचपर्यङ्कपल्यङ्काः' **इत्यमरः** । क्वचित् कदाचित् शाकाहारः शाकम्, आहारः यस्य सः । अपि च क्वचित् शाल्योदनरुचिः शाल्योदने बहुमूल्यभक्ते रुचिः स्पृहा यस्य सः । क्वचित् कन्थाधारी कन्थां जीर्णपटनिर्मितलम्बमानसर्वशरीरपरिधापकं वस्त्रविशेषं प्रावणान्तरं वा, धरतीति तथोक्तः । 'कंथा मृन्मयभित्तौ च तथा प्रावणान्तर' इति **मेदिनी** । क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः दिवि भवं दिव्यम्, दिव्यञ्च तदम्बरं सुवस्त्रं तस्य धरतीति धरः, धारकः कार्यार्थी कार्यं स्वोद्देश्यमर्थयत्यपेक्षते नान्यत्किमपि । मनस्वी महामना धीरः । पृथ्वीशय्यादिना दुःखं पर्यङ्कशयनादिना सुखं च न गणयति । किंतु सुखदुःखयोः समानावस्थयैव कार्यसाधनतत्परो भवतीति भावः । शिखरिणीवृत्तम् ।।८२।।

सरलसंस्कृतार्थ :– कार्यनिष्पत्त्यभिलाषी मनस्वी सुखं दुःखं वा न पश्यति

---

१. 'क्वचित्पृथ्वीशय्यः' इति पाठान्तरम् ।
२. 'शाकाहारः' इति पाठान्तरम् ।

अभीष्टसिद्धये क्वचित् प्रदेशे समये वा भूमौ स्वपिति क्वचिच्च पर्यङ्के स्वपिति। क्वचित् सरसं नीरसं वा भुनक्ति। क्वचित् जीर्णवस्त्रं क्वचिच्च दिव्याम्बरधरो भवति; येन केनाप्युपायेन कार्यसाधनमेव तल्लक्ष्यं भवति ॥८२॥

हिन्दी :– कार्यसिद्धि चाहनेवाला महामना पुरुष कभी भूमि पर सोता है, तो कभी पलंग पर, कभी साग खाता है तो कभी महार्घ भात का आस्वाद लेता है, कभी जीर्ण गुदड़ी धारण करता है तो कभी दिव्यवस्त्र धारण करता है, (तथापि वह) सुख और दु:ख की गणना नहीं करता ॥८२॥

English Translation :– A high-minded man doesnot care a pin for either the pleasure or the pains (of the world) when striving for the accomplishment of his object. Sometimes he takes his sleep on the ground, at another on a palanquin. At one time he dines on poor coarse vegetables while on other occasions he savours of the superior rice. Now he wears a kantha (a loose poor pitched coat of a beggar) and then he is seen in heavenly garments. (82)

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता, शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः, श्रुतस्य विनयो, वित्तस्य पात्रे व्ययः ।
अक्रोधस्तपसः, क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ।।८३।।

अन्वय : (Prose Order)– ऐश्वर्यस्य सुजनता विभूषणं, शौर्यस्य वाक्संयमः, ज्ञानस्य उपशमः, श्रुतस्य विनयः, वित्तस्य पात्रे व्ययः, तपसः अक्रोधः, प्रभवितुः क्षमा, धर्मस्य निर्व्याजता, सर्वकारणम् इदं शीलं सर्वेषामपि परं भूषणम् ॥८३॥

नीतिपथ :– ऐश्वर्यस्येति। ऐश्वर्यस्येश्वरस्य भावः ऐश्वर्यं धनादिसामर्थ्यन्तस्य। विभूषणमलंकारःसुजनता सुजनस्य भावः सज्जनत्वम् न तु दौर्जन्यम्। 'अलंकारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्' **इत्यमरः**। शौर्यस्य शूरस्य भावः शौर्यन्तस्य विक्रमस्य वाक्संयमः वाचो वाण्याः संयमो विनियमनं विभूषणम्। शौर्याकथनमित्यर्थः। ज्ञानस्य कर्तव्याकर्तव्यविवेकस्य उपशमः विषयोपरति-र्विभूषणम् शान्तताचलचित्ततेत्यर्थः। श्रुतस्य शास्त्राध्ययनस्य विनयो नम्रता विभूषणमित्यर्थः। वित्तस्य द्रव्यस्य पात्रे

योग्यव्यक्तौ व्ययो निक्षेप: । तपस: तपश्चर्याया: विभूषणम् अक्रोध: क्रोधराहित्यम् । प्रभवितु: समर्थस्य क्षमा सहिष्णुत्वं विभूषणम् । धर्मस्य निर्व्याजता व्याजोऽविद्यमानो यस्य तस्य भाव:, विभूषणम् । किन्तु सर्वकारणं सर्वेषां कारणं सर्वसौख्यहेतु: इदं जगत्प्रसिद्धं शीलं सर्वेषामपि परं बृहद्भूषणं शोभाजनकमित्यर्थ: । 'यदीच्छसि श्रियं तात ! यादृशी सा युधिष्ठिरे । विशिष्टां वा नरव्याघ्र शीलवान् भव पुत्रक' इति महाभारतेऽपि धृतराष्ट्रेणोक्तम् । अत: सर्वथापि शीलमेवाश्रयणीयमिति तात्पर्यम् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तभ् ॥८३॥

सरलसंस्कृतार्थ :– धनजनबलादिसामर्थ्यं सौजन्येन, विक्रान्तत्वं मितभाषितया, ज्ञानं वैराग्येण, श्रुतं विनयेन, वित्तं सत्पात्रे प्रतिपत्त्या, तप: क्रोधराहित्येन, प्रभुत्वं तितिक्षया, धर्मश्च निर्व्याजेन शोभते । किन्तु सर्वेषामपि सौजन्याद्यपेक्षयाप्युत्कृष्टं शीलमेवादिकारणमस्ति ॥८३॥

हिन्दी :– सौजन्य ऐश्वर्य का, वाक्संयम शूरता का, शान्ति ज्ञान का, विनय विद्या का, सत्पात्र को दान धन का, अक्रोध तप का, क्षमा सामर्थ्यवान् का और सरलता धर्म का आभूषण है, परन्तु इन सभी का मूल कारण सदाचार सभी का सर्वोत्कृष्ट विभूषण है ॥८३॥

English Translation :– Gentleness is an ornament of riches, a restraint over the tongue that of valour, calmness of knowledge, modesty of study, distribution of money to deserving man, of wealth. To give up anger is the ornament of a penance and not to be showy is an ornament of religion. But character, the cause of all the blessings is the greatest ornament of all virtures. (83)

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु, गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु, युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।८४।।

अन्वय : (Prose Order)– नीतिनिपुणा: निन्दन्तु यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मी: समाविशतु यथेष्टं वा गच्छतु, मरणमद्यैव वा अस्तु युगान्तरे वा अस्तु । धीरा: न्याय्यात्पथ: पदं न प्रविचलन्ति ॥८४॥

नीतिपथ :– धीरा धर्मे ध्रुवाचारा इत्याचष्टे–**निन्दन्त्विति**। नीतिनिपुणाः नयशास्त्रे निपुणाः विशारदाः निन्दन्तु नायं कार्याकार्यकुशलो देशकालविद्वेति कामं विकत्थन्तां यदिवाथवा स्तुवन्तु बुद्धिमानयं यथादेशकालं व्यवहरति सर्वत्र साधयति चार्थजातमिति प्रशंसन्तु वा कामम्। लक्ष्मीः सम्पत्तिः समाविशतु प्राप्नोतु वा, उत यथेष्टम् इष्टमनतिक्रम्य निजेच्छानुरूपं गच्छत्वपयातु वा। अद्यैवेदानीमेव मरणं मृत्युर्वास्तु उत युगान्तरे कल्पान्तरे वास्तु। धीरा धृतिमन्तो जना न्याय्यात् न्यायादनपेतो न्याय्यस्तस्मात्, पथो मार्गात् पदं चरणमात्रमपि न प्रविचलन्ति न भ्रश्यन्ति। धर्म एव तेषामसुभूतस्तै रक्ष्यते, मन्दैव तेषां धनकृते जनकृते वा चिन्तेति तत्त्वम्। न्यायमार्गमेवानुसरन्ति इति भावः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥८४॥

सरलसंस्कृतार्थ :– नयविशारदाः निन्दन्तु वा प्रशंसन्तु, लक्ष्मीः आगच्छतु गच्छतु वा, सम्प्रत्येव मृत्युः भवतु अपरस्मिन् युगे वा भवतु, मनस्विजनाः कदापि न्यायोचितान्मार्गात् पराङ्मुखा न भवन्ति। तदेव कुर्वन्ति यन्न्यायोचितं भवति ॥८४॥

हिन्दी :– नीतिचतुर निन्दा करें अथवा स्तुति करें, इच्छानुकूल सम्पत्ति आवे अथवा दूर चली जाय, आज ही मरण हो अथवा दूसरे युग में, परन्तु न्यायोचित मार्ग से धैर्यशील मनुष्य एक पग भी विचलित नहीं होते हैं ॥८४॥

English Translation :– Those efficient in Niti may approve or not of, wealth may come or go as it chooses, the patient do not deviate an inch from the path of honesty. (84)

भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा,
लोकाः! पश्यत[1] दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥८५॥

अन्वय : (Prose Order)– भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोः, क्षुधा म्लानेन्द्रियस्य भोगिनः मुखे आखुः नक्तं विवरं कृत्वा स्वयं निपतितः। तत् पिशितेन तृप्तः असौ सत्वरं तेनैव पथा यातः। हे लोकाः! पश्यत, हि दैवमेव नृणां वृद्धौ क्षये च कारणम् अस्ति ॥८५॥

---

१. 'स्वस्थास्तिष्ठत' इति पाठान्तरम्।

नीतिपथ :– वृद्धौ क्षये वा दैवमेवानिवार्य मूलमित्याह–**भग्नेति** । भग्नाशस्य भग्ना त्रुटिताशा जीवनविश्वासो यस्य: स: । तस्य करण्डपिण्डिततनो: करण्डे पिण्डिता तनु:यस्य तथाभूतस्य, क्षुधा बुभुक्षया म्लानेन्द्रियस्य म्लानानि जीर्णानि इन्द्रियाणि करणानि यस्य तस्य, भोगिन: सर्पस्य मुखे वदने आखु:मूषक: 'उंदुरुर्मूषकोऽप्याखु:' **इत्यमर:**, नक्तं रात्रौ विवरं छिद्रं कृत्वा निर्माय स्वयं केनाप्यप्रेरित: निपतित: प्रविष्ट: । तत्पिशितेन तस्य मूषकस्य पिशितेन मांसेन तृप्त: सन्तुष्टोऽअसौ सर्पस्तेनैव आखुनिर्मितविवरेणैव यात: पिठरान्निर्गत: । 'पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमामिषम्' **इत्यमर:** । हे लोका: ! मनुष्या: ! यूयम् पश्यत, विचारदृष्ट्या अवलोकयत यद् दैवमेव नृणां मनुष्याणां वृद्धौ उन्नतौ क्षये अवनतौ च कारणं हेतुर्वा भवतीति शेष: । 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यम्' **इत्यमर:** । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥८५॥

सरलसंस्कृतार्थ :– हे जना: ! विलोकयत कश्चित्पन्नग: पेटिकायां कुण्डलित: क्षुधा पीडितोऽतिष्ठत्, एतादृशस्य सर्पस्य मुखे कश्चित् मूषक: पेटिकायां स्वयं छिद्रं विधाय रात्रौ पतित: । ततोऽसौ भोगी मूषकमांसेन तृप्त: सन् तत्कृतविवरद्वारेण सत्वरं बहिर्निगत्य पलायित: । भग्नाशस्य सर्पस्य प्रयत्नं, विनैव क्षुन्निवृत्तिं तथा कृतप्रयत्नस्याखोर्विनाशं च दृष्ट्वा निश्चीयते यत् सम्पत्तौ विपत्तौ च दैवमेवकारणं भवति ॥८५॥

हिन्दी :– निराश, पिटारे में दबे हुए शरीरवाले, भूख से दुर्बल इन्द्रियोंवाले, सर्प के मुख में चूहा स्वयं ही छेद करके जा पड़ा और साँप उसी के मांस से तृप्त होकर शीघ्र ही उसी मार्ग से चला गया । हे मनुष्यों ! देखो, दैव ही मनुष्यों की वृद्धि तथा ह्रास का कारण है ॥८५॥

English Translation :– A mouse cut a hole through the basket and fell of its own accord into the mouth of helpless serpent, within it and a whose organs of sense were worn out. The serpent satisfied itself with the flesh of the mouse and went out at once by the same hole. Look hear people ! Fate alone is the cause of the rise and fall of the men. (85)

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ।।८६।।

अन्वय : (Prose Order)– आलस्यं मनुष्याणां शरीरस्थो हि महान् रिपुः । उद्यमसमो बन्धुर्नास्ति । यं कृत्वा नावसीदति ॥८६॥

नीतिपथ :– आलस्योद्यमौ किदृशाविति प्रतिपादयति– **आलस्यमिति** । आलस्यमलसो मन्दस्तस्य भावः । 'मंदस्तुंपरिमृज आलस्यः शीतकोऽलसः' **इत्यमरः** । मनुष्याणां जनानां शरीरस्थः शरीरे तिष्ठतीति । शरीर एव वर्तमानो नान्यरिपुवद्ब- हिरवतिष्ठमानः । महान् दृढो दुर्जयो वा हि निश्चयेन रिपुः शत्रुः । उद्यमसम उद्यमेन परिश्रमेण समः सदृशो बन्धुर्बान्धवः सहायको वा नास्ति कोऽपि जगति । यमुद्यमं कृत्वाश्रित्य कर्ता नावसीदति न विपद्यते । किन्तु सुखमेवानुभवतीत्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥८६॥

सरलसंस्कृतार्थ :– आलस्यं मनुष्याणां शरीरस्थो महान् शत्रुरस्ति । उद्यमसमः मनुष्याणामन्यः स्वजनो नास्ति। उद्यमं कुर्वन् मनुष्यः कष्टां दशां न गच्छति । अतः आलस्यं विहाय सोद्योगेन सर्वदा भाव्यम् ॥८६॥

हिन्दी :– आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहनेवाला महान् शत्रु है । पुरुषार्थ के समान कोई मित्र नहीं है, जिसका आश्रय लेने से मनुष्य दु:ख का अनुभव नही करता ॥८६॥

English Translation :– Idleness is a great enemy who dwells in our own bodies. There is no relative like activity that never brings trouble in her train. (86)

छिन्नोऽपि रोहति तरुः, क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके[१] ॥८७॥

अन्वय : (Prose Order)– तरुः छिन्नः अपि रोहति । चन्द्रः क्षीणः अपि पुनः उपचीयते । इति विमृशन्तः सन्तः लोके विप्लुता अपि न सन्तप्यन्ते ॥८७॥

नीतिपथ : छिन्न इति । तरुश्छिन्नः कर्तितः सन्नपि पुनः रोहत्युद्गच्छति । चन्द्रः क्षीणः कृष्णाक्षे दिनक्रमेण कृशः सन्नपि पुनरुपचीयते प्रतिदिनं कलया वर्धते । इति दृष्टान्तद्वयं विमृशन्तो विचारयन्तः सन्तः सुजना लोके जगति विप्लुता विघ्नैरुपद्रुताः सन्तो न सन्तप्यन्ते नहि दु:खिता भवन्ति । किन्तु तरुचन्द्रदृष्टान्तेनाभिवृद्धि-माशंसन्त एव सन्तीत्यर्थः । आर्यावृत्तम् ॥८७॥

---

१. 'न लोकेषु' इत्यपि पाठः ।

सरलसंस्कृतार्थ :– छिन्नः महीरूहः पुनः उद्गच्छति । कलाक्षीणः चन्द्रमाः पुनः वृद्धिमभिगच्छति, इति विचार्य सज्जनाः विपत्स्वपि दुःखिता न भवन्ति ॥८७॥

हिन्दी :– वृक्ष काटा जाने पर भी पुनः पनपता है और कृष्णपक्ष में क्षीण हुआ चन्द्रमा पुनः बढता है । इस प्रकार विचार करने वाले सत्पुरुष विपत्काल में व्याकुल नहीं होते है ॥८७॥

English Translation :– A tree grows even after it is cut off. The moon having once declined grows again bigger and bigger. Taking these two instances into consideration the wise are not troubled although their course of progress may be checked. (87)

नेता यस्य बृहस्पतिः, प्रहरणं वज्रं, सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे
तद्युक्तं ननु दैवमेव शरणं, धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ।।८८।।

अन्वय : (Prose Order)– यस्य नेता बृहस्पतिः । प्रहरणं वज्रं । सुराः सैनिकाः । दुर्गं स्वर्गः । हरेरनुग्रहः । वारणः ऐरावतः, इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभित् परैः संगरे भग्नः । तत् व्यक्तं दैवमेव शरणं वृथा पौरुषं धिक् धिक् ॥८८॥

नीतिपथ :– दैवं दुर्जयमिति कतिपयैः श्लोकैराह– **नेतेति** । यस्य बलभिदो नेता मार्गशिक्षकः हिताहितोपदेशकर्ता बृहस्पतिः बृहतां वाचां पतिर्बृहस्पतिः प्रहरणमायुधं प्रहारसाधनं शस्त्रं वा वज्रं कुलिशं 'वज्रमस्त्रीस्यात्कुलिशं भिदुरं पविरि**त्यमरः** । सैनिकाः भटाः सुरा अमराः । दुर्गं गुप्तिस्थानं स्वर्गः । सकललोकाधीश्वरस्य हरेः विष्णोर्वा अनुग्रहः कृपाभाव इति यावत् । वारणो गज ऐरावतः । इत्युक्तप्रकारेणैश्वर्य-बलान्वित ऐश्वर्यञ्च धनादिसामर्थ्यञ्च बलञ्च जनशक्तिश्च सेनारूपा तयोः, ताभ्यामन्वितोऽ-साधारणत्वाददद्भुतकरशक्तिसहितोऽपि बलभिदिन्द्रः परैर्दानवैः सङ्गरे युद्धे भग्नो जित एव । तत्तस्मात्कारणात् व्यक्तं स्पष्टमेव दैवशरणं दैवं च तच्छरणं दैवं वा शरणं यस्य तदिति । वृथा निरर्थकं पौरुषं पुरुषकारमुद्यमं वा धिग्धिक् । निन्दनीयो हि श्रमो दैवस्योत्कृष्टतरत्वादित्याशयः । 'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता' इति **माघे** । अत्र साभिप्रायविशेषणत्वात्परिकरालंकारः । तदुक्तम्– 'साभिप्रायविशेषणं परिकरः' इति । शार्दूलविक्रीडितम् ॥८८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– दैवे सहायके सत्येव पुरूषार्थः सफलो भवति न अन्यथा, यतो हि इन्द्रस्य हिताहितोपदेशकर्ता बृहस्पतिः, प्रहारसाधनं वज्रं, देवा योद्धारः स्वर्गो दुर्गः, त्रिभुवनपतेः हरेः कृपा, ऐरावतो गजः, तथापि रणे दैत्यैः स पराजितः । अतो हेतुना स्पष्टं भवति यत् दैवमेव प्रधानं न तु पौरूषम् ॥८८॥

हिन्दी :– जिसके हिताहितोपदेशकर्ता स्वयं बृहस्पति हैं, शस्त्र वज्र है, देवगण सैनिक हैं, स्वर्ग ही किला है, जिस पर त्रैलोक्य नाथ हरि की कृपा है, गजेन्द्र ऐरावत हाथी है– ऐसे ऐश्वर्य तथा बल से युक्त होते हुए भी इन्द्र युद्ध में शत्रुओं से पराजित हो जाता है इससे यही स्पष्ट होता है कि भाग्य ही मात्र रक्षा करनेवाला है। निरर्थक परिश्रम को बार-बार धिक्कार है ॥८८॥

English Translation :– After all, Indra, who is led by Brihaspati and whose weapon is the thunder-bolt, who has got heavens for his stronghold and uncontrollable Airavata for his elephant, even thus equipped with men and money, Indra, was vanquished in the battle by his mighty foes the demons. It is, therefore, clear, that he who is favoured by fortune fares better in the battle-field. Fie upon the useless effort. (88)

कर्मायत्तं फलं पुंसां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ।।८९।।

अन्वय : (Prose Order)– पुंसां फलं कर्मायत्तं, बुद्धिः कर्मानुसारिणी, तथापि सुधिया सुविचार्यैव कुर्वता भाव्यम् ॥८९॥

नीतिपथ :– विचारोऽपि कर्तव्य एव दैवप्राधान्ये सत्यपीत्याह–**कर्मायत्तमिति**। पुंसां पुरुषणां फलमभीप्सितं वस्तु कर्मायत्तं कर्मणः पुरुषार्थस्यायत्तमधीनम् 'अधीने निघ्न आयत्त' **इत्यमरः**। बुद्धिः मनुष्यस्याध्यवसायशक्तिरपि कर्मानुसारिणी प्राक्तनाधुनिककर्मानुकूलगामिनी भवति । ततः किं विचारेणेति चेन्न, तथापि सुधिया शोभना धीर्यस्य तेन विदुषा विचार्येदं कर्मैव कृतमिष्टं फलं सेत्स्यत्येवं कृत्तमनिष्टमुत्पादयिष्यतीत्यूहापोहपूर्वकमारम्भणीयं कर्म न तु अविचार्य करणीयं दैवमात्रशरणेन किमपि । अनुष्टुपछन्द्रः ॥८९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यद्यपि प्राक्कृतकर्मानुसारमेव सुखदुःखादिरूपं फलं

लभ्यते, तदनुसारमेव बुद्धिः सदसत् कर्मणि वा प्रवर्तते। तथापि बुद्धिमता नरेण यदपि कर्तव्यं तत्सुविचार्यैव ॥८९॥

हिन्दी :– यद्यपि मुनष्यों को पूर्वकृत कर्मानुसार ही सुख-दुःखादिकों की उपलब्धि होती है और बुद्धि भी कर्म का ही अनुसरण करती है तथापि विद्वान् व्यक्ति को सम्यक् विचार पूर्वक ही कार्य करना चाहिए ॥८९॥

English Translation :– The result depends on the actions of men. Wisdom follows actions, still the wise should attempt a work after fully considering the consequence thereof. (89)

खल्वाटो[1] दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्ताडितो[2] मस्तके,
वाञ्छ[3]न्देशमनातपं विधिव[4]शात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्य[5]रहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥९०॥

अन्वय : (Prose Order)– खल्वाटः दिवसेश्वरस्य किरणैः मस्तके सन्तापितः अनातपन् देशं वाञ्छन् विधिवशात् तालस्य मूलं गतः। तत्र अपि पतता महाफलेन तस्य शिरः सशब्दं भग्नम्। प्रायो भाग्यरहितः यत्र गच्छति तत्रैवापदो यान्ति ॥९०॥

नीतिपथ :– खल्वाटः प्राकृतिकलुप्तलोमशिरस्कः दिवसेश्वरस्य दिवसस्य दिनस्येश्वरः स्वामी तत्कर्त्तेत्यर्थः। तस्य सूर्यस्य किरणैः रश्मिभिः मस्तके मूर्ध्नि सन्तापितः सम्पीडितः सन् अनातपमविद्यमान आतपो यत्र तं, छायायुतं देशं वाञ्छन्निच्छंस्तालस्यैतन्नामकस्य वृक्षस्य मूलं गतस्तालाधस्तात्तिष्ठति। तत्रापि तालमूले पतता वृन्ताद्गलता महाफलेन महच्च तत्फलमिति कूष्माण्डकल्पेन बृहत्तरेण फलेनास्य खल्वाटस्य शिरः सशब्दं शब्देन नादेन सह यथा तथा भग्नं खण्डितम्। किन्तेन तात्पर्यमित्याह-प्रायो बाहुल्येन भाग्यरहितो भाग्येनाननुकूलेन विधिना रहितः शून्यो

१. 'खर्वाटो' इति पाठान्तरम्।
२. 'सन्तापिते' इति पाठान्तरम्।
३. 'गच्छन्' इति पाठान्तरम्।
४. 'द्रुतगतिस्तालस्य' इति पाठान्तरम्।
५. 'दैवहतक' इति पाठान्तरम्।

जनः इति विशेष्यमध्याहर्त्तव्यम्। तत्रैव तस्मिन्नेव भाग्यहीनेन शरणीकृते स्थान एवापदो विपत्तयो गच्छन्ति प्रयान्ति तमभिभवितुम्। शार्दूलविक्रीडितम् ॥९०॥

सरलसंस्कृतार्थ :– कश्चित् खल्वाटः सूर्यतापसंतप्तः छायायुक्तं प्रदेशमिच्छन् दुर्दैवात् तालवृक्षस्य अधोगतः। तदैववेगेन उपरितः पतता तालफलेन तस्य मस्तकं सशब्दं स्फुटितम्। प्रायशो दैवानुग्रहशून्याः मनुष्याः यत्र गच्छन्ति तत्र तमुद्दिश्यैवापद अपि भूम्ना यान्ति ॥९०॥

हिन्दी :– सूर्य की किरणों से सन्तप्त हुआ एक गंजा मनुष्य छायायुक्त प्रदेश को ढूँढता हुआ भाग्यवश ताड के वृक्ष के नीचे पहुँच गया। किन्तु वहाँ भी वृक्ष से गिरते हुए ताडफल से उसका सिर फूट गया। भाग्यहीन व्यक्ति जहाँ भी जाते हैं आपत्तियाँ भी वहीं पहुँच जाती हैं ॥९०॥

English Translation :– The result depends on the actions of men. wisdom follows actions, still the wise should attempt a work after fully considering the consequences therof. (90)

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं, गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो ! बलवानिति मे मतिः ॥९१॥

अन्वय : (Prose Order)– शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं, गजभुजङ्गयोः अपि बन्धनं, मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य अहो ! विधिः बलवानिति मे मतिः ॥९१॥

नीतिपथ :– शशीति। शशिदिवाकरयोः शशी च चन्द्रश्च दिवाकरश्च सूर्यश्च तयोः। ग्रहपीडनं ग्रहेण पीडनं राहुग्रसनमित्यर्थः। गजभुजङ्गमयोर्गजश्च हस्ती च भुजङ्गमश्च सर्पश्च तयोः बन्धनं नियमनं, मतिमतां च प्रशस्ता मतिर्येषान्तेषाम्, सुबुद्धिशालिनां च विदुषामपि दरिद्रतां निर्धनतां विलोक्य जगति दृष्ट्वा अहो ! आश्चर्यम्, विधिर्दैवं बलवान् बलिष्ठं सर्वेभ्य इति मे मम मतिर्बुद्धिर्विचारो वा भवति। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥९१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– रविनिशाकरयोः ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनं सुबुद्धिशालिनां च दरिद्रतां विलोक्य 'दैवं, प्रधानमिति मे मतिः भवति ॥९१॥

हिन्दी :– सूर्य और चन्द्रमा का राहु (ग्रह) के द्वारा ग्रसित होना, गज एवं सर्प का भी बन्धन में फँस जाना, तथा विदग्धजनों की दरिद्रता को देखकर मुझे यही प्रतीत होता है कि भाग्य ही बलवान् है ॥९१॥

English Translation :– Seeing that even the sun and moon are eclipsed and elephants and snakes too, suffer bondage, and also having looked upon the poverty of the wisemen, it is indeed my opinion that fate is powerful. (91)

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः ।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह ! कष्टमपण्डितता विधेः ।।९२।।

अन्वय : (Prose Order)– तावत् अशेषगुणाकरं भुवः अलङ्करणं पुरुषरत्नं सृजति तदपि चेत् तत् क्षणभङ्गि करोति, अहह ! विधेः अपण्डितता (इति) कष्टम् ।।९२।।

नीतिपथ :– सृजतीजि । तावत् प्रथमन्तु विधिरशेषगुणाकरमशेषाश्च समस्ताश्च ते गुणा विद्याविनयादयः सद्भावास्तेषामाकरं खनिमिव । भुवः पृथिव्या अलङ्करणं भूषणीभूतं पुरुषरत्नं पुरुषं जनं रत्नमिव तत् । सृजति निर्माति । ततः किमत आह तदपि तथापि । स्वयं रचयित्वापि चेद्यदि तदेवं गुणगणविशिष्टं नरं क्षणेनाल्पकालेन मुहूर्त्तमात्रेण भज्यते नश्यतीति तथाविधं करोति । अहहेत्याश्चर्यपूर्वकं कष्टप्रकाशनाय विधेर्दैवस्यापण्डितता मूर्खत्वं कष्टं दुःखप्रदम् । यदीदृग्गुणसमन्वितं जनं विधिः स्थायिनं कुर्यात् तदा तु तस्य पाण्डित्यं प्राकट्यमियात् । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।।९२।।

सरलसंस्कृतार्थ :– विधाता प्रथमं गुणवन्तं पृथिव्याः भूषणं कञ्चिन्नरमुत्पादयति तथा सृजन्नपि तं क्षणनाशशीलं करोति । इदं कष्टकरं विधेः अपाण्डित्यमेव ।।९२।।

हिन्दी :– यह अत्यन्त कष्टप्रद है कि विधाता प्रथम समस्तगुणों के आकर पृथ्वी के आभूषण पुरुषरत्न को उत्पन्न करता है, किन्तु फिर उसे क्षणभङ्गुर बना देता है– अहो ! विधाता का यह अपाण्डित्य है ।।९२।।

English Translation :– At first the creator creates a man who is endowed with all virtues and who is an ornament to the earth, and then he makes him perishable in a moment. Oh, the painful imprudence of the creator. (92)

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा, सूर्यस्य कि दूषणम् ।

धारा नैव पतन्ति चातकमुखे, मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ।।९३।।

अन्वय : (Prose Order)– यदा करीरविटपे पत्रं नैव वसन्तस्य किं दोषः ? उलूकोऽपि यदि दिवा नावलोकते, सूर्यस्य किन्दूषणम् ? चातकमुखे धारा नैव पतन्ति मेघस्य किं दूषणम् ? यद् विधिना ललाटलिखितं तत् मार्जितुं कः क्षमः ।।९३।।

नीतिपथ :– विधातुर्लेखोऽप्रक्षाल्यो भवतीत्याह– **पत्रमिति**। यदा यदि करीरविटपे करीरस्य विटपे वृक्षे पत्रमेकमपि दलन्नैव नास्ति तर्हि किं वसन्तस्य कुसुमाकरस्य सर्ववृक्षफलपुष्पदलसमृद्धिकरस्य दोषोऽपराधः ? उलूको कौशिकः पक्षिविशेषः यदि दिवा दिने नावलोकते द्रष्टुं न प्रभवति तर्हि तत्र सूर्यस्य लोकचक्षुषः किन्दूषणं का त्रुटिः ? धारा वर्षाप्रवाहश्चातकमुखे चातकस्य पक्षि भेदस्य मुखे न पतन्ति तर्हि मेघस्य पयोदस्य किन्दूषणं कोऽपराधः ? यतः विधिना परमेष्ठिना जन्मनः पूर्वमेव यत् किञ्चिदपि ललाटलिखितं भालेऽक्षर मुट्टङ्कितं तन्मार्जितुं दूरीकर्तुं प्रोञ्छितुं वा कः पुरुषः क्षमः समर्थः । नहि कोऽपीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।९३।।

सरलसंस्कृतार्थ :– यदि वसन्तर्तौ करीरविटपे पत्रं नास्ति तत्र वसन्तस्य को दोषः। यदि कौशिकः दिवा न पश्यति तत्र सूर्यस्य को दोषः। जलधाराभिः प्लावितायां भुवि चातकमुखे नैकोऽपि बिन्दुपतितश्चेत्तत्र मेघस्य कोऽपराधः। विधात्रा यस्य भाग्ये यावल्लिखितं तावदेव तेन लप्स्यते। तन्मार्जितुं न कोऽपि समर्थः ।।९३।।

हिन्दी :– करीरवृक्ष पर यदि पत्ते नहीं अंकुरित होते तो उसमें वसन्त का क्या दोष ? यदि उल्लू को दिन में दिखाई न दे तो उसमें सूर्य का क्या दोष ? यदि चातक के मुख में जलधारा न पडे तो उसमें मेघ का क्या दोष ? वस्तुतः विधाता ने जिसके भाग्य में जो लिख दिया है उसे मिटाने में कोई समर्थ नहीं है ।।९३।।

English Translation :– If there is no leaf on the karir-tree what is the fault of the vernal season. If an owl cannot see in the day what guilt is of the sun ? If the trorrents of the rain do not fall into the mouth of a chataka-bird what crime has been committed by a cloud therein. Who can wipe away what God has written on the fore-head. (93)

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा,
विधिर्वन्द्यः, सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं किममरगणै[1]:, किञ्च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ।।९४।।

अन्वय : (Prose Order)– देवान् नमस्यामः, ननु ते अपि हतविधेः वशगाः, विधिः वन्द्यः, ननु सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः । यदि फलं कर्मायत्तम्, तर्हि अमरगणैः किम्, विधिना च किम् । तत् कर्मभ्यो नमः, येभ्यो विधिरपि न प्रभवति ।।९४।।

नीतिपथ :– नमस्याम इति । देवानिन्द्रादीन् नमस्यामो नमामो वन्दामहे । पुनरपरितुष्यन्निवाह–**नन्विति** । निश्चयेन तेऽपि देवा हतविधेर्हतश्चासौ विधिरिति तस्य दग्धस्य दैवस्य हतो दग्धो हतको वेत्यादीनि पदानि गालिरूपाणि प्रयुज्यन्ते यथा 'अस्य दग्धोदरस्यार्थे कुर्यात्पातकं महत्' इत्यादौ । वशगा नतु नियम्याः खुल । ततः किन्दैवमेव नमस्यमित्येनेनाप्यरितुष्यान्निवाह विधिर्दैवं वन्द्यो नमस्यम् । न तु अस्यापि स्वातन्त्र्यमित्याह–सोऽपि विधिरपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः नियतानि नियतानि प्रतीति प्रतिनियतं प्रत्येकं यथावद् व्यवस्थापितं कर्म कृतिः, तस्यैवैकं फलं भोगं ददाति वितरतीति सः । विधिरपि यथायथं कर्मफलान्येव दददस्मन्नमस्यो भवितुन्नार्हति । कर्माधीनत्वात्तद्व्यवस्थायाः । फलं यदि कर्माधीनं चेत्, अपरैर्दैवैः किं विधिना च किम्, न किञ्चिदपीत्यर्थः । तत्तस्मात्कारणात्कर्मभ्यो नमोऽस्मत्प्रणामोऽस्तु । कीदृशेभ्यः कर्मभ्य इति प्रतिपादयति । विधिरपि येभ्यो न प्रभवति यदुपरि दैवमपि शासनं कर्त्तुन्न समर्थस्तेभ्यः कर्मभ्यो नमस्कारः समुचितः । अत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रत्युत्कर्षावहत्वान्मालादीपकाख्योऽलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ।।९४।।

सरलसंस्कृतार्थ :– विधिः देवाश्च न नमस्कारार्हाः, यतः देवाः विध्यधीनाः विधिश्च पूर्वकर्मानुसारं फलं वितरति । अतो देवान् विधिं चोपेक्ष्य कर्मभ्य एव नमस्यामः । यतो हि देवानां प्रभुरपि विधिः कर्मवशगः ।।९४।।

हिन्दी :– हम देवों को प्रणाम करते हैं, किन्तु ये भी निष्ठुर विधाता के वश में हैं, इस हेतु भाग्य ही नमस्कार के योग्य है । परन्तु वह भी कर्मानुकूल नियत फल को ही देनेवाला है अर्थात् फल की प्राप्ति कर्म के अधीन है, अतः उन देवों और

---

१. 'किमपरैः' इति पाठान्तरम ।

विधि से कोई प्रयोजन नहीं, अत: उन कर्मों को ही नमस्कार है जिनके सम्मुख उस विधि का भी वश नहीं चलता ॥९४॥

English Translation :– Let us salute gods. They too, are under the control of the creator. (or god Brahma) Then Fate deserves a bow on our hands. But it too, imparts the fruits only of our own actions. Therefore, what with gods and also what with the creator. A bow to our actions which cannot be over ruled even by the creator himslef. (94)

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः[१],
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने, तस्मै नमः कर्मणे ॥९५॥

अन्वय : (Prose Order)– येन ब्रह्मा ब्रह्माण्डभाण्डोदरे कुलालवन्नियमित:, येन विष्णु: दशावतारगहने महासङ्कटे क्षिप्त:, येन रुद्र: कपालपाणिपुटके भिक्षाटनम् कारित:, सूर्यो नित्यमेव गगने भ्राम्यति तस्मै कर्मणे नम: ॥९५॥

नीतिपथ :– भङ्ग्यन्तरेण कर्ममहिमानमाह– **ब्रह्मेति** । येन कर्मणा कर्त्रा ब्रह्मा विधि: कुलालवद् कुम्भकारतुल्यं ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ब्रह्माण्डमेव भाण्डं तस्योदरे ब्रह्माण्डरूपिण: पात्रस्य गर्भे नियमित: नियोजित: । येन च कर्मणा कर्त्रा विष्णु: कर्मभूतो दशावतारगहने महासङ्कटे दश च तेऽवतारा दशावतारा इति, तै: गहने, महासङ्कटे अतिक्लेशकरे कर्मणि क्षिप्त: पातित: नियोजित-इत्त्यर्थ: । येन च कर्मणा रुद्र: शम्भुर्महादेव: कपालपाणिपुटके ब्रह्मशिर एव पाणिपुटकं करतलस्थभिक्षाहरणोचितभाजनं तत्र भिक्षाटनं भिक्षायै अटनं यत् कारित: नियोजित: । किं च येन कर्मणा प्रेरित: सूर्यो रविर्येन नोदित: सन् नित्यमेव गगने व्योम्नि भ्राम्यति चक्रमणं कुरुते तस्मै महामहिमशालिने कर्मणे नम: नमस्कारोऽस्तु । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥९५॥

सरलसंस्कृतार्थ :– कर्मवशादेव ब्रह्मा कुम्भकारवत् सृष्टिकार्यं निर्मापयति, विष्णुश्च दशसु अवतारेषु कष्टं सहते । रुद्रश्च कपालजटितेन पाणिना भिक्षार्थं

---

१. 'सेव्यते' इति पाठान्तरम् ।

पर्यटति । दिनकरोऽपि गगने सततं भ्रमति । येन कर्मणा एतेऽपि नियोजितास्तम् कर्म अवश्यं नमस्करणीयम् ।।९५।।

हिन्दी :– जिस कर्म ने विधाता को ब्रह्माण्डरूपी पात्र के अन्दर कुम्हार की तरह सृष्टि कार्य हेतु नियोजित किया, जिस कर्म ने विष्णु को दशावतार रूपी कष्टतम कार्य में नियुक्त किया, जिस कर्म ने शंकर को हाथ में खप्पर लेकर भिक्षाटन कराया और जो कर्म सूर्य को आकाश में निरन्तर भ्रमण कराता है उस कर्म को नमस्कार है ।।९५।।

English Translation :– A bow to action (karmans) which has, like a potter, imprisoned Brahma, under the Brahmanic egg; which had thrown vishnu into the great trouble of assuming the ten incarnations, which has made Mahadeo beg for alms from door to door, bearing the skull of a man in his hands, and which makes the sun take its incessent round in the sky. (95)

नैवाऽऽकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्यापि नैव, न च यत्नकृताऽपि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य, यथैव वृक्षाः ।।९६।।

अन्वय : (Prose Order)– (पुरुषस्य) आकृतिर्नैव फलति, कुलं नैव, शीलं न, विद्यापि नैव, च यत्न कृतापि सेवा न (फलति) । (किन्तु) पूर्वतपसा संचितानि पुरुषस्य भाग्यानि काले फलन्ति यथैव वृक्षाः ।।९६।।

नीतिपथ :– भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषमित्येव भङ्ग्यन्तरेणाह– **नेति** । आकृतिराकारसंपत्तिर्नैव फलति । प्रयोजनमिष्टं न सम्पादयत्येव । नैव कुलमुच्चवंशो फलति । शीलं सत्स्वभावो वा न फलति । विद्यापि वेदादिज्ञानमपि नैव फलति । न च यत्नकृता यत्नेन महतावधानेन कृता सम्पादिता सेवा राजादिशुश्रूषापि न च फलति । नृपस्यान्यस्य वा कस्यचिद् धनपतेः सेवापि किमपि फलं जनयितुं न शक्नोति । किन्तर्हि सर्वानतिक्रम्यापि फलतीत्याह–पूर्वतपसा पूर्वञ्च प्राक्तनञ्च तत्तपो धर्मानुष्ठानं, तेन पुराकृतसुकृतेन संचितानि सम्पादितानि पुरुषस्य मनुष्यस्य भाग्यानि दैवानि काले अनुकूलसमये परिपाकवेलायां वा फलन्ति स्वाभीष्टं सम्पादयन्ति ।

खंल्विति निश्चयेन। यथा वृक्षा: तरव: परिपाकसमये एव फलन्ति फलसंयुक्ता: जायन्ते। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥९६॥

सरलसंस्कृतार्थ :– पुरुषस्य स्वरूपं, वंशं, शीलं, विद्या तथा प्रयत्नानुष्ठिता सेवा इष्टफलदाने न समर्था: सन्ति, अपि तु पूर्वतपसा सम्पादितं पुरुषस्य भाग्यमेव यथोचितसमये वृक्षवत् फलं ददाति। तपोजनितभाग्यविशेषव्यतिरेकेण फलजनकं न किंचिदस्तीत्यर्थ: ॥९६॥

हिन्दी :– न स्वरूप फल देता है, न कुल, न शील, न विद्या और न यत्न से की हुई सेवा ही फल देती है, प्रत्युत पूर्वजन्म में संचित पुण्यों द्वारा बना हुआ भाग्य ही उचित समय पर वृक्ष की भाँति फल दिया करता है ॥९६॥

English Translation :– Neither appearance bears fruit, nor one's character; or family learning does not and never service done with exertion. All these things do not bear any fruit. But the fate determined by one's penance of the previous births, undoubtedly, bears fruit, in season, like trees. (96)

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥९७॥

अन्वय :(Prose Order)– पुरा कृतानि पुण्यानि वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति ॥९७॥

नीतिपथ :– पुण्यकर्मणां प्रभावातिशयं वर्णयति–**वने इति**। पुरा पूर्वजन्मनि कृतानि सम्पादितानि पुण्यानि सुकृतानि वनेऽरण्ये, रणे युद्धे शत्रुजलाग्निमध्ये शत्रुश्चारिश्च जलं चापश्चापग्निश्चानलश्च तेषां मध्येऽन्त:। महार्णवेऽर्णांसि जलानि विद्यन्ते तत्र सोऽर्णव:। महांश्चासावर्णवश्च इति, तस्मिन् महोदधौ। पर्वतमस्तके पर्वतस्य मस्तकम्, तस्मिन् गिरिशिखरे वा सुप्तं शयानं प्रमत्तं निश्चेतनं विषमस्थितं विषमे सङ्कटे स्थितं वर्तमानं वा जनमिति विशेष्यं शेष:। रक्षन्ति पालयन्ति। उपजातिवृत्तम् ॥९७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– पूर्वजन्मार्जितानि पुण्यानि वने, युद्धे, शत्रुजलाग्निमध्ये, पर्वतशिखरे वा सुप्तम्, असावधानं संकटापन्नं वा जनं रक्षन्ति ॥९७॥

हिन्दी :– जंगल में, युद्ध में, शत्रु, पानी और अग्नि के मध्य, महासागर में, पर्वत शिखर पर सोये हुए, उन्मत्तावस्था में संकटापन्न मनुष्य की रक्षा पूर्वजन्म के पुण्य ही करते हैं ।।९७।।

English Translation :– The good deeds previously done, save a man who is sleeping, senseless or landed in a danger, in a forest, a battle or in the clutches of an enemy, in water or in fire or if he is on the sea or upon the peak of a mountain. (97)

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः,
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं,
हे साधो ! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ।।९८।।

अन्वय : (Prose Order)– या खलान् साधून् करोति, मूर्खान् विदुषः करोति, द्वेषिणो हितान् करोति, परोक्षं प्रत्यक्षं कुरुते, तत् क्षणात् हालाहलम् अमृतं कुरुते, हे साधो ! वाञ्छितं फलं भोक्तुं तां भगवतिं सत्क्रियामाराधय, व्यसनैः विपुलेषु गुणेषु आस्थां वृथा मा कृथाः ।।९८।।

नीतिपथ :– सत्कर्मणां विचित्रं माहात्म्यमाह– **येति** । या सत्क्रिया खलान् दुष्टान् साधून् सत्पुरुषान् करोति, अत्र प्रतिवाक्यं करोतीति क्रिया यथायथमध्या हर्त्तव्या । मूर्खानज्ञानिनोऽपि विदुषः पण्डितान् करोति । द्वेषिणः रिपून् हितान् हितमार्गरतान् मित्राणीति यावत् करोति । परोक्षमक्ष्णः परम्, अतीन्द्रियमपि वस्तु प्रत्यक्षं सर्वजनदृश्यं कुरुते विदधाति । तत्क्षणात् सचासौ क्षणस्तस्मात् तत्कालमेव हालाहलं विषमपि अमृतं कुरुते, अतः हे साधो ! हे सुजन निपुणेति वा । वाञ्छितमिच्छितं फलं भोक्तुमनुभवितुं तां पूर्वोक्तगुणविशिष्टां भगवतीमैश्वर्यदात्रीं सत्क्रियां सत्कर्म आराधय सेवस्व । विपुलेषु बहुषु गुणेषु व्यसनैर्हृदयं प्रविष्टैः दुःस्वभावैरास्थां श्रद्धां वृथा निरर्थकं मा कृथाः न कुरु । तस्याः क्लेशैकफलकत्वादिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।९८।।

सरलसंस्कृतार्थ :– हे सुजन ! सकलाभीष्टसिद्धिरभिलष्यते चेत्, तां भगवतीं सत्क्रियामाराधय, या खलान् साधून्, मूर्खान् विदुषः, द्वेषिणः च हितान् करोति, परोक्षमिन्द्रियगोचरं, तत् क्षणात् हालाहलम् अमृतञ्च करोति । किन्तु आपद्भूयिष्ठेषु गुणेषु वृथामास्थां मा विधेहि ।।९८।।

हिन्दी :– हे साधो ! यदि मनोरथ की सिद्धि चाहते हो तो उस भगवती सत्क्रिया की आराधना करो । जो दुर्जनों को सज्जन, अज्ञानियों को विद्वान्, शत्रुओं को हितैषी, परोक्ष को प्रत्यक्ष एवं विष को भी अमृत कर देती है । कष्टदायक गुणों में व्यर्थ आस्था मत रखो ॥९८॥

English Translation :– O good man! serve for enjoying the desired fruits, the blessed good action which turns the wicked into the good, foes into friends and soon transmutes the invisible into the visible and a strong poison into nector. Do not cherish devotion towards several virtues. (98)

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥९९॥

अन्वय : (Prose Order)– गुणवद् अगुणवद् वा कार्यजातं कुर्वता पण्डितेन यत्नतः परिणतिः अवधार्या, अतिरभसकृतानां कर्मणां शल्यतुल्यो विपाकः आविपत्तेः हृदयदाही भवति ॥९९॥

नीतिपथ :– गुणवद्दयादाक्षिण्यादिगुणसंयुतं वा उत अगुणवद्गुणरहितं वा, कार्यजातं कर्मकुर्वताचरणादौ पण्डितेन परिज्ञात्रा परिणतिः परिपाकः फलं वावधार्या विचारणीयम् । यत्नत एव कर्मजातमारब्धव्यम् । कथमित्याह अतिरभसकृतानामतिरभसेनानावश्यकेन वेगेन कृतानां विहितानां कर्मणां क्रियाणामाविपत्तेर्निष्पत्तिपर्यन्तम् हृदयदाही हृदयं चित्तं दग्धुं भस्मसात्कर्त्तुं शीलमस्य सः, शल्यतुल्य शल्येन बाणेन तुल्यः सदृशः विपाकः परिणामः उदर्को वा भवति संजायते । 'रभसो हर्षवेगयोरिति **विश्वः** । अतः अवधानेनैव कार्यजातमारम्भणीयम् । मालिनीवृत्तम् ॥९९॥

सरलसंस्कृतार्थ :– बुद्धिमता पुरुषेण कार्यं कुर्वता यत्नतः आदौ परिणतिः अनुसन्धेया । अन्यथा त्वरया अविचार्य कृतस्य कर्मणः फलमाजीवनं कष्टकरं भवति ॥९९॥

हिन्दी :– उचित अथवा अनुचित कार्य को करते समय विवेकी मनुष्य को उस कार्य के परिणाम के विषय में पहले ही सोच लेना चाहिए । अन्यथा अत्यन्त

त्वरापूर्वक किये गये कार्यों का परिणाम मृत्युपर्यन्त हृदय को शूल जैसा सन्तापकारक होता है ॥९९॥

English Translation :– Before doing a good or bad action, a wise man should determine carefully the consequences the result of the deeds, done with undue and uncalled for haste, is heart burning and pains for the whole life like the blade of an arrow. (99)

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति [१]तिलकणांश्चन्दनैरिन्धनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखित वसुधामर्कमूलस्य[२] हेतोः ।
कृत्वा कर्पूरखण्डान् वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्,
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः ॥१००॥

अन्वय : (Prose Order)– यः मनुजः इमां कर्मभूमिं प्राप्य इह तपो न चरति सः मन्दभाग्यो वैदूर्यमय्यां स्थाल्यां चन्दनैः इन्धनोघैः लशुनं पचति । अर्कमूलस्य हेतोः सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैः वसुधां विलिखति । कर्पूरखण्डान् कृत्वा कोद्रवाणां समन्तान् कुरुते ॥१००॥

नीतिपथ :– कर्मक्षेत्रमयं संसारोऽत्र कालो वृथा न यापनीय इत्याह– **स्थाल्यामिति** । यो मन्दभाग्यो मन्दं तुच्छं भाग्यं दैवं यस्य स मनुज इह लोके इमां प्रत्यक्षां संसाररूपां कर्मभूमिं कर्मवपनार्था भूमिस्ताम्, प्राप्य तपो मोक्षैकसाधनीभूतां तपश्चर्यान्न चरति नानुतिष्ठति अपितु वैदूर्यमय्यां विदूरात्प्रभवति इति वैदूर्यस्तस्य विकारः वैदूर्यमयी तस्यां विद्रुमरचितायां स्थाल्यां पचन्यां चन्दनैश्चन्दनतरुसम्बन्धि-भिरिन्धनौघैः काष्ठभारैः लशुनं द्विजाभक्ष्यत्वेन स्मृतिकारैः प्रतिपादितं मूलविशेषं पचति विक्लेदयति । अर्कमूलस्य क्षुद्रस्यार्काख्यवृक्षस्य मूलस्य हेतोः कारणात् सौवर्णैः सुवर्णस्य कनकस्य विकारास्तैर्लाङ्गलाग्रैर्लाङ्गिलानां हलानामग्रैः फालैः हलमुखैर्वा वसुधां भुवं विलिखति कर्षति । तथा कर्पूरखण्डान् कर्पूरस्यावयवान् खण्डयित्वा त्रोटयित्वा कोद्रवाणां तुच्छधान्यविशेषाणां समन्तात् परितस्तानि वृतिमावरणं कुरुते । स्रग्धरावृत्तम् ॥१००॥

---

१. 'तिलखलं' इति पाठान्तरम् ।
२. 'मर्कतूलस्य' इति पाठान्तरम् ।

सरलसंस्कृतार्थ :– मरकतमणिस्थाल्यां महार्हं चन्दनकाष्ठं प्रज्वलय्य लशुनसदृशक्षुद्रपदार्थस्य पाचनं, अर्कमूलसदृशक्षुद्रवस्तून्मूलनार्थं सुवर्णहलेन भूमिकर्षणं तथा क्रोद्रवाणां रक्षायै कर्पूरखण्डान् खण्डयित्वा तेषामावरणं यथातिमूर्खत्वं सूचयति तथैवेह संसाररूपां कर्मभूमिं प्राप्य सत्कार्याननुष्ठानमपि नरस्याभाग्यत्वसूचकमेव भवति। अतः सर्वथा सत्कर्मानुष्ठेयं श्रेयस्कामेनेति तात्पर्यम् ॥१००॥

हिन्दी :– जो भाग्यहीन इस कर्मभूमि को प्राप्त करके भी सत्कर्माचरण नहीं करता है वह मानो मरकत की थाली में चंदन की लकडी से लहसुन पकाता है, मदार की जड को उखाडने हेतु सोने के फलकवाले हलाग्र से भूमि कर्षण करता है तथा कोद्रवों की सुरक्षा हेतु उन्हे कपूर के टुकड़ों से ढकता है ॥१००॥

English Translation :– That unfortunate man who comes to this world of actions and yet does not perform penance, is like one who cooks garlic in a pot of coral and uses sandalwood for fuel, or like one who uses a plough of gold to dig up the root of **ipecacuanha** (आक) or again, like one who builds a fence of camphor round the field of **kodon** (a cheap grain that grown wild). (100)

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे,
वाणिज्यं कृषिसेवने च सकला विद्याः कलाः शिक्षताम्[1] ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं,
नाऽभाव्यं भवतीह, कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ।।१०१

अन्वय : (Prose Order)– अम्भसि मज्जतु, मेरुशिखरं यातु, आहवे शत्रूञ्जयतु, वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकलाः विद्याः कलाः शिक्षतां, परं प्रयत्नं कृत्वा खगवद् विपुलमाकाशं प्रयातु (तथापि) इह अभाव्यं न भवति कर्मवशतः भाव्यस्य नाशः कुतः ॥१०१॥

नीतिपथ :– यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथेति यदन्यत्रोक्तन्तदेवाह– **मज्जत्विति**। अत्र जन्तुरितिकर्तृपदमध्याहर्तव्यं प्रतिक्रियम्। अम्भसि जले मज्जतु मग्नो भवतु। मेरुशिखरं मेरोः सुमेरोः शिखरं शृङ्गं यातु गच्छतु। आहवे संग्रामे शत्रून् अरीन् जयतु पराजितान् करोतु। वाणिज्यं वणिजः कर्म, वाणिज्यं क्रयविक्रयादिकम्,

१. 'शिक्षतु' इति पाठान्तरम्।

कृषि: कर्षणं सेवनं परिचर्या ते, सकला: समस्ता: कला गीतवादित्रादिचतु:षष्टिपरिमिता: शिक्षताम् अभ्यस्यतु। परमुत्कृष्टं प्रयत्नं प्रयासं कृत्वा विरच्याकाशयानादियन्त्रो महता व्ययेन परिश्रमेण च। खगवत् खगेन तुल्यं पक्षीव विपुलं विस्तृतमाकाशं गगनमात्मरक्षार्थं भाव्यं वात्मनो निवारयितुं गच्छतु। तथापि इह अस्मिन् लोके कर्मवशत: सदसत्कर्मप्रभावात् अभाव्यं भवितुमशक्यम् असम्भावीति यावत्। न भवति तथा भाव्यस्य भवितुं योग्यस्य चार्थस्य नाशो विघात: कुत: कथम्। यद्भावि तद्भवत्येव यदभावि न तद्भवेत्' इति न्यायात्। शार्दूलविक्रीडितम् ॥१०१॥

सरलसंस्कृतार्थ :– मानव: जले ब्रुडतु, मेरुशिखरं गच्छतु, युद्धे शत्रूञ्जयतु, वाणिज्यं, कृषि: सेवा कलाश्च विद्या: अभ्यस्यतु, अथवा प्रयत्नं कृत्वा खगेन तुल्यं विपुलमाकाशं प्रयातु किन्तु कर्मवशाद् यद्भाव्यं तदवश्यमेव भविष्यति यच्चाभाव्यं तत्कथमपि न भविष्यति ॥१०१॥

हिन्दी :– मनुष्य जलमें प्रविष्ट हो जाय, सुमेरु पर्वत की चोटी पर चढ जाय, युद्ध में शत्रुओं को जीत ले अथवा वाणिज्य, कृषि आदि समस्त विद्याएँ एवं कलाएँ सीख ले तथा अत्यन्त श्रम करके आकाश में पक्षियों के समान उड़ने लगे, फिर भी इस संसार में कर्म के प्रभाव से कभी भी होनी का नाश नहीं हो सकता तथा अनहोनी हो नहीं सकती ॥१०१॥

English Translation :– One may dive into the water, may go up to the peak of the **Sumeru-Mountain,** may conquer enemies in battle, may learn trade, husbandry and all the arts and sciences, may fly up to the sky like a bird, after a great struggle, but, in this world that which is not to happen to one owing to his action, cannot happen to him and that which is to happen cannot be reverted. (101)

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं,
सर्वो जन: [१]सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०२॥

१. 'स्वजनता' मिति पाठान्तरम्।

अन्वय : (Prose Order)– यस्य नरस्य विपुलं पूर्वसुकृतमस्ति तस्य भीमं वनं प्रधानं पुरं भवति, सर्वो जनस्तस्य सुजनतामुपयाति, कृत्स्ना च भूस्तस्य सन्निधिरत्नपूर्णा भवति ॥१०२॥

नीतिपथ :– भीममिति । यस्य नरस्य विपुलं बहुलं पूर्वसुकृतं पूर्वञ्च तत् सुकृतमिति पुराकृतसत्कर्म संजातं पुण्यमस्ति 'पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः' **इत्यमरः** । वर्तने भीमं भयङ्करं वनं तस्य प्रधानं मुख्यं पुरं नगरं भवति, तस्य सर्वोऽशेषोऽपि जनः तस्य निजः परो वा सुजनतामुपकारितां याति गच्छति, दुर्जनोऽपि तदर्थं सज्जनो भवतीत्यर्थः । कृत्स्ना सम्पूर्णा च भूः मही तस्य जनस्य कृते सन्निधिरत्नपूर्णा सन्त उत्तमाश्च ते निधयः पद्मशङ्खादयस्तैः पूर्णा संभृता भवति । 'विश्वंमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलानि' **इत्यमरः** । संजायते । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥१०२॥

सरलसंस्कृतार्थ :– येन मानवेन पूर्वजन्मनि विपुलानि सत्कर्माणि कृतानि तेषां फलरूपतया तेन सर्वत्रैव समृद्धिः अवाप्यते, भयङ्करं वनं पुरं भवति, समस्ता भूमिः रत्नपूर्णाभवति, सर्वोऽपि जनः तस्यानुकूलो भवति । अतः सत्कर्माचरणतत्परेणैव भवितव्यं श्रेयस्कामेनेति अभिप्रायः ॥१०२॥

हिन्दी :– जिस मनुष्य के पास पूर्वजन्म का विपुल पुण्य होता है उसके लिये भयङ्कर वन नगर बन जाता है । सभी जन उसके लिये सुजन बन जाते हैं अथवा अपने जन बन जाते हैं । तथा सम्पूर्ण पृथ्वी उत्तम खजानों और रत्नों से पूर्ण हो जाती है ॥१०२॥

English Translation :– To one who has earned a good deal of good actions previously, a forest becomes a capital city, and to him all friends. The whole earth is for him full of fine treasures and jewels. (102)

को लाभो-गुणिसङ्गमः, किमसुखं-प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियः, प्रियतमा काऽनुव्रता, किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं, राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१०३॥

अन्वय : (Prose Order)– लाभः कः ? गुणिसङ्गमः । असुखं किम् ? प्राज्ञेतरैः संगतिः । हानिः का ? समयच्युतिः । निपुणता का ? धर्मतत्त्वे

रतिः। शूरः कः ? विजितेन्द्रियः। प्रियतमा का ? अनुव्रता। धनं किम् ? विद्या। सुखं किम् ? अप्रवासगमनम्। राज्यं किम् ? आज्ञाफलम् ॥१०३॥

नीतिपथ :– को लाभ इति। लाभः प्राप्तिः कः इति प्रश्नः। गुणिसङ्गमो गुणिभिर्विद्वद्भिः सह सङ्गमः संयोगः सहस्थितिरित्युत्तरम्। असुखं आनन्दाभावः कः ? इति प्रश्नः। प्राज्ञेतरैः प्रकर्षेणोत्तमतया पूर्णतया वा जानन्तीति प्रज्ञाः। प्रज्ञा एव प्राज्ञाः। तेभ्यः इतरास्तैः, पण्डितव्यतिरिक्ता मूर्खास्तैः सङ्गतिः सम्पर्क इत्युत्तरम्। हानिर्न्यूनता केति प्रश्नः ? समयच्युतिः समयादुचितात्कालाच्च्युतिः प्रमादः। यत्कर्म यदा करणीयन्तत्तदाकृत्वा पश्चात्ताप एव फलं, ततोऽभ्यधिकतरा च न हानिः। का निपुणता प्रवीणतेति प्रश्नः। 'प्रवीणे निपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः' **इत्यमरः**। धर्मतत्त्वे धर्मस्य तत्त्वे स्वरूपे तज्ज्ञान इत्यर्थः। रतिः स्नेहः। शूरो वीरः क इति प्रश्नः। विजितेन्द्रियो विजितानीन्द्रियाणि येन सः, वशीकृतेन्द्रियग्रामः। न तु विजितशत्रुः शत्रुविजयापेक्षयेन्द्रियविजयस्य दुष्करतरत्वा-दित्याशयः। प्रियतमाऽतिशयेन प्रियेति प्रियतमा प्रेष्ठा केति प्रश्नः। याऽनुव्रता अनुव्रतं यस्याः सा वशम्वदेति यावत्। धनं वित्तं किमिति प्रश्नः। विद्या वेदपुराणादिज्ञानम्। सुखं मोदश्च क इति प्रश्नः। अप्रवासगमनं प्रवासाय गमनं तन्न भवति इति। राज्यं शासनञ्च किमिति प्रश्नः। आज्ञाफलमाज्ञैव फलम् आज्ञाया अबाधितः प्रचार एव राज्यमित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितम् ॥१०३॥

सरलसंस्कृतार्थ :– (संसारे) सर्वश्रेष्ठो लाभः गुणिनां संगतिः, मूर्खसङ्गः महद्दुःखं, व्यर्थकालापनयनमेव हानिः, धर्मानुराग एव नैपुण्यं, जितेन्द्रियत्वमेव शौर्यम्, आज्ञावर्तिन्येव प्रियतमा, विद्यैव धनं, स्वदेशनिवास एव सुखं, तथा च अबाधितशासनमेव राज्यम् ॥१०३॥

हिन्दी :– [इस संसार में] लाभ क्या है ? गुणियों का साथ। दुःख क्या है ? मूर्खों का संग। हानि क्या है ? समय का चूकना। चतुरता क्या है ? धर्म के तत्त्वज्ञान में प्रीति। शूर कौन है ? जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो। स्त्री कौन-सी ? जो अनुकूल हो। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? परदेश न जाना। राज्य क्या है ? आदेश का निर्बाध क्रियान्वयन होना ॥१०३॥

English Translation :– What is gain ? The company of the virtuous. What is pain ? The society of other than wise. What is loss ? To miss opportunity. What is a

cleverness. An eagerness to understand the secret of duty. Who is brave ? One who has conquered his senses. Who is beloved ? One that is obedient. What is wealth ? Learning. What is a pleasure ? Not to go on a journey to foregin countries. What is a throne or a kingdom ? The carrying out of one's order. (103)

मालतीकुसुमस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनः[१] ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।।१०४।।

अन्वय : (Prose Order)– मालतीकुसुमस्य इव मनस्विनः द्वे गती स्तः, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा वन एव वा शीर्यते ।।१०४।।

नीतिपथ :– मालतीति । मालतीकुसुमस्येव मालत्या वृक्षविशेषस्य कुसुम पुष्पन्तस्येव मनस्विनः उत्तमहृदयवतो द्वे गती पद्धती स्तः । सर्वलोकस्य सर्वश्चासौ लोकस्तस्य । सर्वेषां जनानां मूर्ध्नि मस्तके वा वनेऽरण्य एव वा शीर्यते नश्यति । अनुष्टुब्वृत्तम् ।।१०४।।

सरलसंस्कृतार्थ :– मनस्विनः पुरुषस्य मालतीपुष्पस्येव द्विप्रकारागतिः भवति । यथा मालतीकुसुमं जनानां शरसि गत्वा सम्मानितं भवति अथवा कानने एव शीर्णं भवति तथैव मनस्विनः जनाः सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वर्तन्ते अथवा एकान्ते शीर्यन्ते ।।१०४।।

हिन्दी :– मालती के फूल की भाँति मनस्वियों की दो गतियाँ होती हैं या तो वह सभी के शिर पर रहते हैं अथवा वन में ही जीर्ण हो जाते हैं ।।१०४।।

English Translation :– Like the flower of **Malatee** there are only two modes of living of one who has noble heart. Either he stands ahead among others or perishes in solitude. (104)

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ।।१०५।।

अन्वय : (Prose Order)– अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनधनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः परपरिवादनिवृत्तैः वसुधा क्वचित् क्वचित् मण्डिता ।।१०५।।

---

१. 'द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः' इति पाठान्तरम् ।

नीतिपथ :– अप्रियेति । अप्रियवचनदरिद्रैः अप्रियाणि परुषाणि च तानि वचनानि कथनानि तैर्दरिद्रा हीनास्तैः । प्रियवचनाढ्यैः प्रियाणि मृदूनि च तानि वचनानि वाक्यानि तैराढ्या धनिनस्तैः । स्वदारपरितुष्टैः स्वेषां दाराः कलत्राणि तैस्तुष्टैरन्यदीयदारेष्व गतस्पृहाकैः । परपरिवादनिवृत्तैः परेषामन्येषां परिवादो निन्दा तस्मान्निवृत्तैस्तदकारिभिः । वसुधा पृथ्वी क्वचित्क्वचित्स्थलविशेषेषु न सर्वत्र मण्डिता भूषिता भवति न तु सर्वत्र सर्वदा चेति । श्लोकोक्तसद्गुणगणविशिष्टाः शिष्टाः विरला एवेत्यर्थः । आर्यावृत्तम् ॥१०५॥

सरलसंस्कृतार्थ :– कटुवचनविरहिताः प्रियवचनसम्पन्नाः, एकपत्नीव्रताः, परनिन्दाविमुखाः, सुजनाः वसुधायां क्वचित्क्वचिदेव दृश्यन्ते । उक्तसद्गुणगणविशिष्टाः शिष्टाः विरला एवेत्यर्थः ॥१०५॥

हिन्दी :– कठिन वचनों के दरिद्र, प्रिय वचनों के धनी, अपनी स्त्री मात्र से सन्तुष्ट, पर निन्दा से बचे हुए ऐसे पुरुषों से यह पृथ्वी कहीं-कहीं सुशोभित होती है ॥१०५॥

English Translation :– The earth is decorated, here and there, by such as are poor in speaking harsh words and are rich in sweet ones, who are satisfied with only their own wives and keep away from speaking ill of others. (105)

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणाः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाऽधः शिखा याति[1] कदाचिदेव ।।१०६।।

अन्वय : (Prose Order)– कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुं न शक्यन्ते । अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः शिखा कदाचिदपि अधः न याति ॥१०६॥

नीतिपथ :– धीरोऽवधीरितोऽपि धीर एव नासौ स्वगुणं जहातीत्याह- **कदर्थितस्येति** । कदर्थितस्य कुत्सितोऽर्थः कदर्थः, कदर्थीकृतः कदर्थितः तस्य तिरस्कृतस्यापि । धैर्यवृत्तेः धैर्यं वृत्तिर्यस्य तस्य धीरस्वभावस्य जनस्य धैर्यगुणः शान्तता स्वभावः प्रमार्ष्टुं क्षालयितुं न शक्यते । अधोमुखस्य कृतस्य अवाङ्मुखीकृतस्यापि वह्नेः शिखा ज्वाला कदाचिदपि अधो न याति । 'ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' **इत्यमरः** । किं तूर्ध्वमेव प्रसरन्तीत्यर्थः उपजाजिवृत्तम् ॥१०६॥

---
१. 'यान्ति' इति पाठान्तरम् ।

सरलसंस्कृतार्थ :– यथा अग्निज्वाला कदाचिदपि अधोमुखीना कर्तुं न शक्यते तथैव धीर: दुर्जनै: संत्रासितोऽपि स्वकीयं धैर्यगुणं न जहाति ॥१०६॥

हिन्दी :– धैर्यशाली व्यक्ति को तिरस्कृत करने पर भी उसका धीर स्वभाव नहीं बदलता। जैसे कि अग्नि का मुख नीचे करने पर भी उसकी ज्वाला कभी नीचे को नहीं जाती ॥१०६॥

English Translation :– The natural patience of a man even though he may have been overthrown, is indelible. The blase of fire, although it may be turned up side down, never goes downward. (106)

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति[१] यस्य
चित्तं, न निर्दहति कोपकृशानुताप: ।
[२]कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-[३]
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीर: ।।१०७।।

अन्वय : (Prose Order)– यस्य चित्तं कान्ताकटाक्षविशिखा: न दहन्ति कोपकृशानुताप: न निर्दहति, भूरिविषयाश्च लोभपाशै: न कर्षन्ति। स धीर: इदं कृत्स्नं लोकत्रयं जयति ॥१०७॥

नीतिपथ :– विश्वविजयार्थं के गुणा अपेक्ष्यन्त इत्याह–**कान्ताकटाक्षेति**। यस्य जनस्य चित्तं मन: कान्ताकटाक्षविशिखा: कान्ताया: ललनाया: कटाक्षानि साकूतानि तिर्यञ्चि च यानि दृष्टानि तान्येव विशिखा: बाणा न दहन्ति भस्मीकुर्वन्ति। 'कान्ता ललना च नितंबिनी' **इत्यमर: ।** कोपकृशानुताप: कोप: क्रोध एव कृशानुरग्निस्तस्य तापो दाह:। न निर्दहति निश्शेषं यथास्यात् तथा न दहति सन्तापयति। भूरिविषयाश्च भूरयो बलवत्तरा विषया: रूपाद्या बहवो भोगा:। लोभपाशैश्च लोभ एव पाशास्तै: लोभरूपैर्बन्धनैरित्यर्थ:। यस्य चित्तं न कर्षन्ति वशीकुर्वन्ति स धीर: स्थिरबुद्धि: इदं कृत्स्नमशेषं लोकत्रयं लोकानां त्रयं त्रीण्यपि भुवनानि जयति। सर्वानपि स्वतेजसाभिभवतीत्यर्थ:। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥१०७॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यस्य जनस्य चित्तं कामिनीकटाक्षबाणै: न छिन्दति,

---

१. 'लुनन्ति' इति पाठान्तरम्।
२. 'तर्षन्ति' इति पाठान्तरम्।
३. 'लोभपाशा' इति पाठान्तरम्।

कोपाग्नि: न सन्तापयति, लोभपाशै: न स्वायत्ती कुर्वन्ति, स एव धीर: जगद्विजयी। स: लोकत्रयमात्माधीनं करोतीत्यर्थ:। तस्य न किञ्चिदप्यसाध्यमिति भाव: ॥१०७॥

हिन्दी :– जिस का चित्त स्त्रियों के कटाक्षबाणों से घायल नहीं होता, जिसको क्रोधरूप अग्नि सन्तापित नहीं करता तथा विषयवासनाएँ जिसको लालायित नहीं करती वह धैर्यसम्पन्न मनुष्य तीनों लोकों को जीत लेता है ॥१०७॥

English Translation :– He, whose heart is not burnt by the arrows of sidelong glanses of women, whose heart is not reduced to ashes by the heat of the fire of anger and whose heart is not attracted by several objects of enjoyment, by means of snares of greed, conqueres all the three fold world. (107)

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव [१]परिस्फुरिततेजसा ॥१०८॥

अन्वय : (Prose Order)– परिस्फुरिततेजसा भास्करेण इव एकेन अपि शूरेण हि महीतलं पादाक्रान्तं क्रियते ॥१०८॥

नीतिपथ :– एकेनेति। परिस्फुरिततेजसा परिस्फुरति परित: स्फुरितं प्रसृतं तेजो ज्योतिर्यस्य तेन। भास्करेणेव सूर्येणेवैकेनापि शूरेण वीरेण महीतलं भूतलं पादाक्रान्तं पादै: सूर्यपक्षे किरणै: शूरपक्षे चरणाभ्याञ्चाक्रान्तमधिष्ठितं क्रियते विधीयते। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१०८॥

सरलसंस्कृतार्थ :– यथा एक: तेजस्वी सूर्य: समस्तलोकं स्वकिरणै: व्याप्तं करोति तथैव एक: अमितपराक्रमी शूर: स्वविक्रमेण सकलं जगत् स्वपादाक्रान्तं करोति ॥१०८॥

हिन्दी :– विस्तीर्ण तेजवाले सूर्य की भाँति अकेला ही पराक्रमी वीर सम्पूर्ण भूमण्डल को चरणों से आक्रान्त कर लेता है ॥१०८॥

English Translation :– Like the sun spreading its light throughout all the four quarters, a single brave man places his foot upon the heads of the three flod world. (108)

---

१. 'स्फारस्फुरि' इति पाठान्तरम्।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं[1] शीलं समुन्मीलति ।।१०९।।

अन्वय : (Prose Order)– यस्य अङ्गे अखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति तस्य वह्निः जलायते, जलनिधिः कुल्यायते, मेरुः तत्क्षणात् स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते, व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते ।।१०९।।

नीतिपथ :– वह्निरिति । यस्य नरस्याङ्गे शरीरेऽखिललोकवल्लभतममखिलो लोकः समस्तजनस्तस्य वल्लभतममतिशयेन वल्लभं प्रियतमं शीलं वृत्तं समुन्मीलति प्रकाशते तस्य पुंसो वह्निरग्निर्जलायते जलवच्छीतलमाचरति शान्तिप्रदो भवतीत्यर्थः । जलनिधिः जलानामपान्निधिः सागरः कुल्यायते अल्पनदीवाचरति । मेरुः सुमेरुगिरिः तत्क्षणात् स चासौ क्षणस्तस्मात् सद्यः स्वल्पशिलायते स्वल्पा च सा शिला स्वल्पशिला स्तोकः पाषाणखण्डस्तद्वदाचरति । मृगपतिः सिंहः सद्यस्तत्कालमेव कुरंगायते हरिण इवाचरति । 'मृगे कुरंगवातायुहरिणाजिनयोनयः' **इत्यमरः** । व्यालः विषधरः भीषणोऽपि माल्यगुणायते मालेव माल्यं, तस्य गुणः सूत्रन्तद्वदाचरति । 'आशीविषो विषधरश्चक्री व्यालः' **इत्यमरः** । तथा विषरसः विषमेव रसो द्रवः पीयूषवर्षायते अमृतवृष्टिरिवाचरति । 'पीयूषममृतं सुधा' **इत्यमरः** । सुधापूरसदृशो भवतीत्यर्थः । प्रतिकूलं सर्वं शीलवतोऽनुकूलं भवतीति भावः । एषा उपमा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।१०९।।

सरलसंस्कृतार्थ :– शीलसम्पन्नस्य जनस्य दुःखहेतवोऽपि सुखहेतव एव भवन्ति । तस्य पुंसः वह्निः जलमिवाचरति, समुद्रः स्वल्पनदीवाचरति, मेरुः तस्मिन्नेवक्षणे अल्पदृषदिवाचरति, हिंस्र सिंहः सद्यः हरिण इवाचरति, विषरोषभीषणः सर्पः पुष्पस्रगिवाचरति, गरलरसः अमृतवृष्टिरिवाचरति ।।१०९।।

हिन्दी :– जिसके शरीर में सब लोगों का सबसे अधिक प्रिय शील विराजमान है उसके लिए अग्नि जल समान हो जाता है, समुद्र तत्क्षण एक छोटी सी नहर, मेरु पर्वत लघु चट्टान, तथा सिंह तत्काल हिरन बन जाता है । सर्प फूलों की माला तथा विषरस शीलवान् के लिए अमृत का प्रवाह बन जाता है ।।१०९।।

---

१. 'वल्लभतरं' इति पाठान्तरम् ।

English Translation :- To one, whose person is glorified with character, the dearest thing of all, fire becomes water and the sea soon changes into a small canal. To such a man as described above, sumeru becomes a very small piece of stone and lion is transformed into deer instantaneously, a snake is as a garland of flowers and the poison liquid serves the purpose of a glassful of nectar. (109)

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ।।११०।।

अन्वय (Prose Order)– सत्यव्रतव्यसनिनः तेजस्विनः असून् अपि सुखं सन्त्यजन्ति, (किन्तु) पुनः लज्जागुणौघजननीम् अत्यन्तशुद्धहृदयाम् अनुवर्तमानां स्वां जननीमिव प्रतिज्ञां न (त्यजन्ति) ।।११०।।

नीतिपथ :– प्रतिज्ञाभङ्गो न भूषणं महानुभावानमित्यन्ते निरूपयन्सतां महत्त्वकीर्तनलक्षणं मङ्गलं निबध्नाति–**लज्जेति** । सत्यव्रतव्यसनिनः सत्यञ्च तद् व्रतं तदेव व्यसनं तदेषामस्तीति सत्यप्रतिज्ञामात्रधनाः, तेजस्विनः मानिनः मनुष्याः असून् प्राणानपि किम्पुनर्धनाद्यन्यत् तुच्छतरं वस्त्वित्यपि शब्दार्थः । 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाश्चैवम्' **इत्यमरः** । सुखं लीलयैव सन्त्यजन्ति । पुनः परं लज्जागुणौघजननीं लज्जा च व्रीडा च गुणाश्च दयादाक्षिण्यादयश्चतेषां जननीं प्रसवित्रीम् अत्यन्तशुद्धहृदयामत्यन्तं नितरां शुद्धं पवित्रं हृदयं यस्यास्ताम् । अनुवर्तमानामानुकूल्येनाचरन्तीं स्वां निजां जननीं मारतमिव प्रतिज्ञां दृढं निश्चयं न त्यजन्ति । वसन्तलिका वृत्तम् ।।११०।।

सरलसंस्कृतार्थ :– सत्यपालनतत्पराः तेजस्विनः पुरुषाः प्राणान् सुखेन त्यजन्ति किन्तु लज्जादिगुणकदम्बजननीं शुद्धहृदयां स्वां जननीमिव प्रतिज्ञां न कदापि सन्त्यजन्ति ।।११०।।

हिन्दी :– सत्यव्रती तेजस्वी जन अपने प्राणों को भी सुखपूर्वक त्याग सकते हैं किन्तु लज्जा आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली तथा अत्यन्त पवित्र

हृदयवाली और सदा अनुकूल अपनी माता की भाँति प्रतिज्ञा को नहीं छोडते हैं ॥११०॥

English Translation :– The men of self-respect give up, even their lives easily, but being fond of maintaining their vow of truth they never break their promise which creates in them a sense of shame and also produces several other virtues. This goddess of promise they consider equal to their mother who is possessed of extremely pure heart and favours them permanently. (110)

इति श्री केशवराव पंडितवर्यस्य तनूजेन राजेश्वरशास्त्रिणा विरचितया नीतिपथाख्यया व्याख्यया समेतं महाकवि-भर्तृहरिविरचितं नीतिशतकम् सम्पूर्णम् ।।

।।श्री हरिः शरणम् ।।

श्लोकानुक्रमणी

	पृष्ठ संख्या
अकरुणत्वं	५६
अज्ञः सुखमाराध्यः	३
अधिगतपरमार्थान्	१८
अप्रियवचनदरिद्रैः	१११
अम्भोजिनी	१९
असन्तो नाभ्यर्थ्याः	३१
आरम्भगुर्वी	६४
आलस्यं हि	९२
इतः स्वपिति केशवः	८३
उद्भासिताखिल	६३
एकेनापि	११४
एके सत्पुरुषाः	८०
एको देवः	७४
ऐश्वर्यस्य विभूषणं	८९
कदर्थितस्यापि हि	११२
करे श्लाघ्यस्त्यागः	६९
कर्मायत्तं फलं पुंसाम्	९५
कान्ताकटाक्षविशिखाः	११३
किं तेन हेमगिरिणा	८६
कुसुमस्तबकस्येव	३७
कृमिकुलचितं	१०
केयूराणि न विभूषयन्ति	२०
को लाभः गुणिसङ्गमः	१०९
क्वचिद्भूमौ शय्या	८८
क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम्	२३

	पृष्ठ संख्या
क्षीरेणात्मगतोदकाय	८१
क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि	३२
खल्वाटो दिवसेश्वरस्य	९६
गुणवदगुणवद्वां	१०५
छिन्नोपि रोहति	९३
जयन्ति ते सुकृतिनो	२७
जाड्यं धियो हरति	२६
जाड्यं ह्रीमतिगण्यते	५७
जातिर्यातु रसातलं	४२
तानीन्द्रियाण्यविकलानि	४३
तृष्णां छिन्धि	८४
त्वमेव चातकाधारो	५४
दानं भोगो	४७
दाक्षिण्यं स्वजने	२४
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं	०१
दुर्जनः परिहर्त्तव्यो	५७
दौर्मन्त्र्यान्नृपति	४५
न कश्चिच्चण्डकोपानां	६१
नमस्यामो देवान्	१००
नम्रत्वेनोन्नमन्तः	७५
निन्दन्तु नीतिनिपुणाः	९०
नेता यस्य बृहस्पतिः	९४
नैवाकृतिः फलति	१०२
पत्रं नैव यदा करीरविटपे	९८

	पृष्ठ संख्या
पद्माकरं दिनकरो	७९
परिक्षीण: कश्चित्	४९
परिवर्तिनि संसारे	३६
पापान्निवारयति योजयते हिताय	७८
प्रदानं प्रच्छन्नं	६८
प्रसह्य मणिमुद्धरेन्	०४
प्राणाघातान्निवृत्ति:	३०
प्रारभ्यते न खलु	३०
ब्रह्मा येन कुलालवत्	१०१
भग्नाशस्य करण्डपिण्डित	९१
भवन्ति नम्रास्तरव:	७६
भीमं वनं भवति	१०८
मज्जत्वम्भसि	१०७
मणि: शाणोल्लीढ:	४७
मनसि वचसि काये	८५
मालती कुसुमस्येव	१११
मृगमीनसज्जनानां	६५
मौनान्मूक:	६२
यदचेतनोऽपि	४१
यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं	०८
यद्धात्रा निजभाल	५३
य: प्रीणयेत्सुचरितै:	७३
यस्यास्ति वित्तं स नर:	४४
या साधूंश्च खलान् करोति	१०४
यां चिन्तयामि सततं	०२
येषां न विद्या	१४
रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्नदेवा	८७

	पृष्ठ संख्या
राजन् दुधुक्षसि क्षितिधेनुमेनां	५०
रे रे चातक सावधानमनसा	५५
लज्जागुणौघजननीं जननीमिव	११६
लभेत सिकतासु तैलमपि	०५
लांगूलचालनमधश्चरणावपातं	३५
लोभश्चेदगुणेन किं	५९
वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये	१०३
वह्निस्तस्य जलायते	११५
वरं पक्षच्छेद:	३९
वरं पर्वतदुर्गेषु	१५
वहति भुवन	३८
वाञ्छा सज्जनसङ्गमे	६६
विद्याकिर्ति:	५२
विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं	२१
विपदि धैर्यमथाभ्युदयेक्षमा	६७
व्यालं बालमृणालं	०६
शक्यो वारयितुं जलेन	१२
शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं	९७
शशी दिवसधूसरो	६०
शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिर:	१५
शिर: शार्वं स्वर्गात्	११
श्रोत्रं श्रुते नैव न तु	७७
संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो	७१
संपत्सु महतां चित्तं	७१
सत्यानृता च परुषाप्रियवादिनी च	५१
सन्त्यन्येऽपि बृहस्पति प्रभृतयो	३७

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः	१३	स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां	१०६
सिंह शिशुरपि निपतति	४१	स्वल्पस्नायुवसावशेष	३४
सूनुः सच्चरितः सतीप्रियतमा	२८	स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा	०८
सृजति तावदशेषगुणाकरं	९८	हर्तुर्याति न गोचरं	१७

●